CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२५५/११

गङ्गावतरण का काव्य-शिल्प

63

श्री रत्नाकर

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

…य-ग्रन्थालय
…करौंदी, वाराणसी-५
२५५/११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' कृत

गङ्गावतरण का काव्य-शिल्प

खव. 5144
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखिका
डॉ० श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव
प्राध्यापिका, वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक
दी इण्डियन बुक डीपो
नीचीबाग, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक

दी इण्डियन बुक डीपो

नीचीबाग, वाराणसी

आम्नाय-ग्रन्था य,

भरतनिधि, ...

वाराणसी-1

मूल्य

पाँच रुपये मात्र

संस्करण

वैशाखी पूर्णिमा—१९७६

मुद्रक

तारा प्रिन्टिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

दो शब्द

कविवर 'रत्नाकर' का गङ्गावतरण अपनी विशेष उपलब्धियों से समन्वित है। कवि की यह कृति उसके काव्य-शिल्प का अनूठा उदाहरण है। यह निर्विवाद सत्य है कि 'रत्नाकर' अपनी विशेष प्रतिभा के कारण आधुनिक काल में होते हुए भी रीतिकाल की समस्त परम्पराओं के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं क्योंकि उनका प्रस्तुत काव्य गङ्गावतरण अपने काव्य-शिल्प के कारण नितान्त प्रसिद्ध है।

गङ्गावतरण का पठन-पाठन धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु काव्य-शिल्प के मौलिकता की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। विगत कई वर्षों से स्नातक कक्षाओं में अध्यापन करते समय मुझे यह अनुभव हुआ कि गङ्गावतरण के कला-पक्ष पर सम्यक् रूप से प्रकाश डालने की नितान्त आवश्यकता है। परीक्षाओं में गङ्गावतरण के काव्य-शिल्प पर अनेक ऐसे प्रश्न पूछे जाते रहे हैं, जिनमें कवि का वर्णन-कौशल, काव्य-सौष्ठव, शिल्प-सौन्दर्य एवं भावनिष्ठ-अभिव्यञ्जना का विस्तृत विवेचन आवश्यक रहा है, और यह पुस्तक उस दिशा में एक लघु प्रयास है। मुझे विश्वास है कि इसके द्वारा विद्यार्थियों का हित-साधन ही नहीं होगा अपितु 'रत्नाकर' के काव्य-वैभव की श्रेष्ठता स्वीकार करने वाले काव्य-प्रेमियों के लिये भी इसकी कुछ न कुछ उपादेयता अवश्य होगी।

—लेखिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्था
भरतनिधि,
वाराणसी-5

विषयानुक्रमणिका

१.	जीवन परिचय और व्यक्तित्व	१
२.	युग की परिस्थितियाँ	४
३.	गङ्गावतरण का खण्ड काव्यत्व	७
४.	वर्णन-कौशल	१३
५.	भावाभिव्यंजना	२२
६.	उद्भावना-शक्ति	३७
७.	प्रकृति-वर्णन	४१
८.	भाषा-सौष्ठव	५०
९.	छन्द-योजना	६४
१०.	अलंकार-विधान	६७
११.	हिन्दी साहित्य में 'रत्नाकर' का स्थान	७७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

जीवन परिचय और व्यक्तित्व

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म भाद्रपद शुक्ल पंचमी, संवत् १९२३ विक्रमी (सन् १८६६) को काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे और पर्याप्त समृद्ध और सम्पन्न थे। इनके परदादा सेठ तुलाराम लखनऊ में बड़े प्रसिद्ध थे और जहाँदारशाह के दरबार में काम करते थे। एक बार उनका आगमन काशी हुआ और वे इस नगरी की रमणीयता पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने शिवालाघाट पर एक मकान लिया और यहीं बस गये। सेठ तुलाराम जी के पुत्र का नाम सेठ संगमलाल था। उनके दो पुत्र हुए—पुरुषोत्तमदास और हरिदास। पुरुषोत्तमदास ने काशी में अपना व्यवसाय अच्छी तरह फैला लिया। श्री पुरुषोत्तमदास के दो पुत्र हुए—बाबू रघुनाथदास और जगन्नाथदास। बाबू रघुनाथदास का असमय में ही स्वर्गवास हो गया था और श्री जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' उपनाम से हिन्दी-काव्य-जगत् में ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि हुए।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के पिता श्री पुरुषोत्तमदास, फारसी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से उनकी गाढ़ी मित्रता थी और इसलिए उनका अनायास झुकाव हिन्दी-काव्य और साहित्य की ओर था। बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर को साहित्य के प्रति अनुराग की भावना अपने पिता से प्राप्त हुई। रत्नाकर जी ने १५ वर्ष की अवस्था में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके हृदय में साहित्य से प्रति अनुराग समस्या-पूर्ति की गोष्ठियों के माध्यम से हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार १८८९ ई० तक 'रत्नाकर' जी ब्रजभाषा में काव्य रचना करने लगे थे। सन् १९०२ ई० तक 'रत्नाकर' जी के काव्य में प्रौढ़ता आ गयी थी। उन्होंने संस्कृत काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया तथा अपना ज्ञान विस्तृत करने के उद्देश्य से प्राकृत तथा अपभ्रंश काव्य का समुचित ज्ञान प्राप्त किया।

सन् १९०२ में आप अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी बने और अपनी ख्याति प्राप्ति कर वे अयोध्या की महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी बन गये और उन्हीं की प्रेरणा से १४ मई, १९२१ में 'गंगावतरण' की रचना हुई। सन् १९०७ में उन्होंने 'हमीर-हठ' का सम्पादन किया था। डा० श्यामसुन्दरदास की प्रेरणा पाकर सन् १९२५ में रत्नाकर जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' का अमूल्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादन किया। सन् १९२८ ई० के लगभग उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और काशी में आकर रहने लगे।

रत्नाकर जी का व्यक्तित्व प्रभावशाली था और इनका रहन-सहन एक सामन्त का-सा था। वे बड़े ही संयमी और उदार व्यक्ति थे तथा धर्म के प्रति उनकी पूरी आस्था थी। उनका स्वभाव विनोदी था और वे बहुधा कवि-गोष्ठियों में सम्मिलित होते थे। कविता वे सस्वर तथा भावपूर्ण मुद्रा में पढ़ते थे। उनकी रुचि बहुमुखी थी तथा उनका सम्बन्ध उस समय के सभी बड़े साहित्यिकों से था। वे पर्यटनप्रेमी थे। उन्होंने भारत के सभी प्रमुख नगरों को देखा था तथा सारे तीर्थों की यात्रा की थी।

यद्यपि रत्नाकर जी आधुनिक युग में पैदा हुए परन्तु उन्होंने पूर्णतः मध्य-युगीन काव्य-प्रवृत्तियों को ही संपोषित किया। खड़ी बोली का आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींच न सका, जहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक, मैथिली-शरण गुप्त, हरिऔध जी तथा सत्यनारायण 'कविरत्न' आदि कवि नयी विचार-धारा से अनुप्राणित हुए वहाँ रत्नाकर जी ने नन्ददास, देव, घनानन्द तथा विहारी आदि की काव्य-पद्धति को ही अपनाया। खड़ी बोली की कविता उन्हें आकर्षित न कर सकी। मध्यकालीन कवियों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था और उस तन्मयता में वे आधुनिक युग में होते हुए भी मध्यकालीन कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनके विषय में लिखा है—

"रत्नाकर जी की मनोवृत्ति मध्ययुग की-सी थी, वे मध्ययुग के ही वाता-वरण में रहते थे और अंग्रेजी पढ़-लिखकर भी उन्हें आधुनिकता से कोई विशेष रुचि न थी। मध्ययुग हिन्दी-साहित्य का स्वर्णयुग था और रत्नाकर जी इसी की रम्य विभूति में रम गये थे। उनकी भाषा, उनके साहित्यिक विषय—सब तत्कालीन ही थे। यहाँ तक कि उनके आचार-व्यवहार में भी उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी प्रसन्न भाव से रहते थे और उन्होंने हमारे इस युग की भाव-भाषा की कोई विशेष चिन्ता नहीं की।"

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर में काव्य की रचना की विलक्षण प्रतिभा थी और उसके लिए उन्होंने वर्षों गहन अध्ययन किया था। प्रतिभाशाली कवि होने के साथ ही उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, फारसी तथा उर्दू एवं अन्य भाषाओं का गम्भीर अध्ययन किया था। वे भाषा-विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। उनकी मेधाशक्ति बड़ी प्रखर थी। विहारी-रत्नाकर तथा सूरसागर के सम्पादन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी विलक्षण काव्य-प्रतिभा देखने को मिलती है। बड़े-बड़े विद्वानों ने उनकी सम्पादन-योग्यता पर गर्व किया है। ब्रजभाषा पर इनको विशेष अधिकार था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषा के विषय में लिखा है कि 'इनकी' भाषा पुराने कवियों से चुस्त और गठी हुई होती थी। वास्तव में भाषा को भावों के अनुकूल बनाने की कला में वे प्रवीण थे। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनकी भाषा के विषय में लिखा है कि "रत्नाकर का व्याकरण-शास्त्र पर पूर्ण अधिकार था। वे भाषा की सुकुमारता का पूर्ण विवेक रखते थे।"

रत्नाकर जी विहारी की भाषा को अपना आदर्श मानते थे और उसी आधार पर उन्होंने अपने काव्य की रचना की। 'विहारी रत्नाकर' के कारण उनकी विद्वत्ता अधिक फैली और उनके पाण्डित्य का प्रकाशन अधिक हुआ। 'विहारी-रत्नाकर' के सम्पादकीय निवेदन में श्री दुलारे लाल भार्गव ने रत्नाकर जी की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"रत्नाकर जी वर्तमान समय के ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि और ज्ञाता हैं। आपकी कवितायें बड़ी सरस और सुन्दर होती हैं। आप के कवित्त देव, पद्माकर आदि के कवित्तों का ध्यान दिला लेते हैं।"

'विहारी रत्नाकर' तथा 'सूर-सागर' के सम्पादन में उनको इतना कठिन परिश्रम करना पड़ा कि उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया और २१ जून १९३२ में लगभग ६५ वर्ष की अवस्था में उनका स्वर्गवास पतितपावन जाह्नवी के तट पर हरिद्वार में हो गया। उनके स्वर्गवास से ब्रजभारती ने एक समृद्ध सपूत खो दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युग की परिस्थितियाँ

श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ था और उनके व्यक्तित्व तथा काव्य-प्रतिभा पर उस युग की स्पष्ट छाप मिलती है। उनके काव्य का विकास द्वितीय युग में हुआ जब कि हिन्दी कविता एक नया मोड़ ले रही थी और खड़ी बोली का काव्य एक नये मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा था तथा उनका जीवनान्त छायावाद युग के अन्तिम चरण में हुआ। इस प्रकार उनका जीवन तीन युगों के संक्रमण काल को देख चुका था। भारतेन्दु काल में विषय, शैली तथा भाषा की दृष्टि से जो गद्य का रूप उपेक्षित था, उसको एक नयी दिशा मिल रही थी। भारतेन्दु युग का उदय उस समय बड़ा ही मूल्यवान सिद्ध हुआ और इस युग की चेतना ने नवीनता का सूत्रपात किया। ब्रजभाषा ही इस युग में काव्य-भाषा थी परन्तु नये जागरण तथा समृद्धि के विकास के लिए गद्य का प्रसार अवश्यम्भावी था और इसलिए इस काल के साहित्यिकों ने खड़ी बोली को जनभाषा के रूप में अंगीकार किया।

इस युग में कई परिवर्तन हुए, जैसे—नये कवियों ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाया, रीतिकालीन काव्य-विषय, छन्द, अभिव्यञ्जना, शैली तथा विधान में परिवर्तन हुआ। गद्य के विविध अंगों, जैसे—कहानी, नाटक, उपन्यास, समालोचना आदि में नयी दृष्टि खुली और नये मानदण्ड स्थापित हुए तथा राष्ट्रीय चेतना के समुचित विकास के लिए सामयिक साहित्य का आरम्भ हुआ और उनके संवर्द्धन के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बढ़ा। समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग आधुनिक युग का जन्मदाता था और स्वयं भारतेन्दु जी ने अपने युग का नेतृत्व किया था।

आधुनिक युग का विकास द्विवेदी काल में हुआ। इस युग में साहित्य की नाना विधाओं ने अनेक नवीन विषयों का ग्रहण और विवर्धन किया। इस समय राष्ट्रीय युग जोर पकड़ रहा था और जीवन तथा समाज के सभी क्षेत्रों में जागृति के सन्देश मिल रहे थे। खड़ी बोली के प्रसार और प्रचार से एक नयी दिशा प्रशस्त हो रही थी। वास्तव में द्विवेदी काल एक निर्माण-काल था और इसी काल में नये संस्कारों की नींव पड़ी। द्विवेदी युग रत्नाकर जी की किशोरावस्था का युग था। उन्होंने इस युग में भी भारतेन्दु-युग का मोह नहीं छोड़ा। खड़ी बोली की झंझा में वे अकेले ही रीतिकालीन काव्य की उपासना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते रहे और अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए।

धीरे-धीरे सन् १९२२ के लगभग हिन्दी काव्य में प्रसाद, पंत और निराला की प्रेरणा से छायावाद का सूत्रपात हुआ और इस भाव-धारा में रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, गोपाल सिंह नेपाली तथा बच्चन आदि कवियों ने अपने को निमग्न किया। इस काल में कवियों ने छन्द के नियमों के प्रति विद्रोह किया तथा अंग्रेजी और बंगला के अनुकरण पर अतुकान्त रचनायें भी कीं। रत्नाकर जी भी इस नूतन परिवर्तनों से अनभिज्ञ न थे और इसका संकेत उन्होंने सन् १९२२ में बीसवें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद से भाषण करते हुए किया था। रत्नाकर जी प्राचीन काव्य परम्परा के कवि थे। यही कारण था कि हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा एक स्वीकार करने का दृष्टिकोण रखते हुए भी वे ब्रजभाषा साहित्य की उपेक्षा नहीं सह सकते थे।

रत्नाकर जी ने काव्य के साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व का विकास भी सामन्त युगीन परिस्थितियों के अनुरूप किया था। रीतिकालीन कविता की माधुरी पर वे मुग्ध थे और उसी के संवर्धन और परिवर्धन में आजीवन लगे रहे। भारतेन्दु काल से संचालित कविगोष्ठियों में वे बड़े ही उत्साह से भाग लेते थे और अपनी समस्यापूर्तियों को मधुर कण्ठ से मोहक मुद्रा में सुनाया करते थे। काशी नगरी के कवि-समाज का उनके जीवन-विकास में ऐतिहासिक महत्व है जिसमें काशी के प्राचीन खेवे के कवि अपनी रचनायें सुनाते, समस्या-पूर्ति करते तथा ब्रजमाधुरी की महत्ता का वर्णन करते थे। कवि समाज के अच्छे कवियों की प्रतिभा ने रत्नाकर जी को बहुत प्रभावित किया और इसी समाज के माध्यम से उन्हें अनेक कवियों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। इन गोष्ठियों में दी जाने वाली समस्यायें प्रायः श्रृङ्गारपरक होती थीं और उनमें रीतिकालीन वातावरण की छाप रहती थी। तत्कालीन कवियों की अभिरुचि एवं रत्नाकर जी की यौवनावस्था ने श्रृङ्गारिक मनोवृत्ति को पर्याप्त उद्दीप्त किया। रत्नाकर जी की प्रखर प्रतिभा तथा गहरी लगन ने उनकी रचनाओं में अपूर्व प्रौढ़ता भर दी थी।

रत्नाकर जी कवि ही नहीं प्रत्युत अपने युग की विशिष्ट रुचि के प्रतिनिधि भी थे। 'काशी कवि समाज' ने उन्हें पर्याप्त लोकप्रियता प्रदान की। उनका मधुर कंठ और सम्मेलनों में काव्य पाठ करने की मोहक मुद्रा सर्वथा सराहनीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी। उनकी कतिपय समस्यापूर्तियाँ बड़ी प्रसिद्ध हो गयी थीं, उनको पढ़कर ऐसा विदित होता है कि रत्नाकर जी का ब्रजभाषा पर विशेष अधिकार था। अपने युग में वे ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते थे और उन्हें कई संस्थाओं से सम्मान और यश प्राप्त हो चुका था। आधुनिक युग में उनसे अधिक प्रांजल और व्याकरण सम्मत ब्रजभाषा में कविता लिखने वाला अन्य कोई कवि नहीं हुआ। वे अपनी परम्परा के अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उनके कारण ब्रजभाषा का गौरव बढ़ा तथा उन्होंने अद्भुत प्रतिभा से काव्य माधुरी का अमर शृङ्गार किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्डकाव्यत्व

हिन्दी साहित्याकाश को अपनी काव्य-किरण मालाओं से सुशोभित करने वाले कवि-कुल-कुमुद-सुधाकर श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' विरचित गंगावतरण एक खण्ड काव्य है जिसमें कवि की प्रतिभा का अनुपम विलास दर्शनीय है। यद्यपि इसकी मूलकथा का आधार वाल्मीकीय रामायण है किन्तु श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में भी इसकी कथा उपलब्ध है। इस खण्डकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा करुण रसों का विशेष रूप से वर्णन प्राप्त होता है। वर्णन की विशदता देखते हुए इसे कई समालोचकों ने महाकाव्य की श्रेणी में रखा है किन्तु वर्णन-प्रसंगों की पुनरुक्ति, नायक का विलम्ब से प्रवेश, लक्ष्य की अनिश्चितता, आदि कई ऐसे कारण हैं जिससे इसे महाकाव्यों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। खण्डकाव्य की कतिपय विशेषताओं के आधार पर उक्त कथन की प्रामाणिकता मूल्यांकित की जा सकती है :—

कथावस्तु

गंगावतरण की कथावस्तु का आधार मुख्यतया गंगा के धरणी तल पर आगमन से सम्बन्धित है जिसे कवि ने वाल्मीकि रामायण के घटना-विशेष से ग्रहण किया है। इस प्रकार यह कथावस्तु महाकाव्य-विशेष की प्रधान-कथा का एक-अंश मात्र है। गंगावतरण की कथा तो पुराणों में भी नाना रूपों में उपलब्ध है परन्तु कवि ने मुख्यतः यह कथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के ३९ वें सर्ग से लेकर ४४ वें सर्ग तक वर्णित गंगागम की कथा से ग्रहण किया है। गंगावतरण के चतुर्थ सर्ग को छोड़कर आठ सर्गों को वाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखा गया है। चौथे सर्ग की कथा को कई पुराणों के आधार पर ग्रहण किया गया है। वाल्मीकि रामायण में संक्षिप्त रूप से वर्णित कथा का विस्तार कवि ने आठ सर्गों में किया है जो रत्नाकर की प्रतिभा और कल्पनाशक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। इस विस्तार के आधिक्य से कुछ समालोचकों द्वारा इसे महाकाव्य की श्रेणी में रखा गया है[1] किन्तु वर्णन की आवृत्ति इत्यादि पूर्व-वर्णित कारणों से इसकी प्रबन्धात्मकता नष्ट हो गई है।

---

१. क—महाकवि रत्नाकर—व्यथित हृदय : प्रथम संस्करण : १९५४ पृष्ठ. २२।

१. ख—रत्नाकर की साहित्य साधना : दान बहादुर पाठक : प्रथम संस्करण १९६५, पृष्ठ. १००।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नायकत्व

महाकाव्य की कथावस्तु में एक नायक होता है जो फल का भोक्ता होने के साथ संस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुसार धीरोदात्त प्रकृति का होता है। कथावस्तु के आरम्भ में ही वह कोई संकल्प करता है जिसे वह कथा के अंतिम सर्ग तक अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता हुआ पूर्ण करने में सफल होता दिखाई देता है। इस दृष्टि से यदि 'गंगावतरण' की कथावस्तु पर विचार करें तो हमें यह स्पष्ट होगा कि 'गंगावतरण' के नायक भगीरथ जिसके द्वारा गंगा को स्वर्ग लोक से पृथ्वी तल पर लाने का संकल्प किया गया है और जो अपनी कठिन तपश्चर्या द्वारा इस संकल्प को पूर्ण करने में सफल होते हैं, गंगावतरण के पंचम सर्ग के अंतिम पृष्ठ पर प्रकट होते हैं। जैसा कवि के निम्नांकित कथन से स्पष्ट है—

करि प्रकास कछु काल अंत अथयौ वह पूपन।
भए भगीरथ भूप भव्य भारत के भूषन॥
दृढ़व्रत धर्म-धुरीन दीन-दुख-दंद-निवारी।
ईस-भक्त द्विज-पितर-साधु-गो-द्विज-हितकारी ॥५।४४

इस प्रकार प्रथम पाँच सर्गों की कथा केवल भूमिका के रूप में लिखी गई है जिसमें कवि ने सूर्यवंशी भगीरथ की कुल परम्परा का वर्णन किया है। प्रथम सर्ग में अयोध्या वर्णन, सगर प्रताप वर्णन, सगर पुत्रोत्पत्ति वर्णन, सगर द्वारा आयोजित अश्वमेधयज्ञ वर्णन, द्वितीय सर्ग में इन्द्र द्वारा विलुप्त अश्वान्वेषण प्रयत्न वर्णन, सगर पुत्रों और सगर की चिन्ता का वर्णन, पाताल लोक में कपिला-श्रम में सगर के साठ सहस्र पुत्रों का कपिल की कोपाग्नि द्वारा भस्म होने का वर्णन किया गया है। तृतीय सर्ग में असमंज के पुत्र अंशुमान द्वारा अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े की खोज, सुगति गरुड़ द्वारा सगर सुतों के कपिल ऋषि की क्रोधाग्नि में उनके आश्रम के समीप भस्म होने तथा अंशुमान द्वारा कपिल मुनि के दर्शन एवं गंगा के माहात्म्य का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में गोलोक में गंगा की उत्पत्ति सम्बन्धी कथा का वर्णन है। पंचम सर्ग में अंशुमान द्वारा प्राप्त सगर सुतों के भस्म होने की सूचना से सगर और उनके परिवार के संताप का वर्णन है तत्पश्चात् सगर की कुल परंपरा के वर्णन-क्रम में भगीरथ का वर्णन किया गया है जिन्होंने अपनी कठोर तपस्या द्वारा गंगा को पृथ्वी तल पर लाने का प्रयत्न किया और उस कार्य में अनेक विघ्न बाधाओं के पड़ते रहने पर भी जो अन्त में सफल हुए। भगीरथ स्वभाव आदि गुणों से चरित्रवान् और गंभीर हैं। वे धीरो-दात्त नायक की श्रेणी में आते हैं किन्तु केवल इतना होना ही महाकाव्य के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नायकत्व के लिए आवश्यक नहीं है। इसमें कवि का दोष नहीं है क्योंकि यह कथा ही ऐसी है जिसमें कुछ जोड़ना कवि-कला की दृष्टि से उपयुक्त नहीं था।

प्रकृति-वर्णन

गंगावतरण को प्रकृति-शोभा से परिपूर्ण काव्य कहा जा सकता है। इस काव्य की सबसे अधिक विशेषता इसका प्रकृति वर्णन ही है और यही इस काव्य का मुख्य आकर्षण है। कवि ने गंगा के अवतरण सम्बन्धी विशद चित्रों का विम्ब रूप में वर्णन किया है। इन चित्रों में कवि की सूक्ष्मदर्शिनी कल्पना-प्रवणता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। सप्तम और अष्टम सर्ग तो इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं, जिसमें कवि ने स्वर्ग-लोक से गंगा के अवतरण का विस्तृत वर्णन किया है। गंगावतरण के समय समस्त भूमण्डल के कंपित होने का वर्णन प्रकृति के उग्र रूप का चित्र उपस्थित करता है। गगन मंडल के कंपन, सूर्य रथ की दिशा का अवरोध, चन्द्रमा की स्थिरता, पवन के प्रवाह का रुक जाना और समस्त आकाश लोक का स्तम्भित हो जाना, पुनः धरणीतल के विंध्य और हिमालय पर्वतों का हिलना, समुद्र में उत्ताल तरंगों का उठना आदि इसके उदाहरण हैं।

प्रकृति के इस उग्र रूप के वर्णन में समस्त जीव-लोक और गगन मंडल में विस्मय का वर्णन मिला हुआ है जो नितान्त स्वाभाविक होने के साथ ही कवि की उत्कृष्ट कल्पना और सूझ का परिचायक है। सूर्य के घोड़ों का भय के मारे भड़कना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वाहनों का तनिक भी न रुकना। दिग्गजों की चिग्घाड़, देवांगनाओं का अपने-अपने घर से निकल कर विस्फारित नेत्रों से कानों पर हाथ देकर मङ्गल के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना आदि अनेक चित्र भरे पड़े हैं।

इस उग्ररूप के वर्णन के पश्चात् उत्प्रेक्षा द्वारा प्रकृति के कोमल सौन्दर्य से परिपूर्ण चित्रों को कवि ने मानो किसी चित्रकार की तूलिका से अंकित किया है। एक उदाहरण देखिए :—

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हें निज अंगी।
नव भूषन नव रत्न-रचित सारी सतरंगी॥
गंगागम-पथ माँहि भानु कैंधौं अति नीकी।
बाँधी बंदनपार विबिध बहु पटापटी की॥ ७।३४

कवि ने इस कोमल स्वरूप का चित्र वस्तुतः आगे आने वाले श्रृङ्गार-चित्र की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगा के उग्ररूप का स्थिर होकर कोमल हो जाने का वर्णन नितान्त हृदय-ग्राही है जिसे शब्द-चित्रों के माध्यम से कवि ने बड़ी कुशलता से अंकित किया है।

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं।

भयो वेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि विघटि सुरट उघटी हर-हर की ।। ७।३७

कवि ने भूलोक पर गंगा के प्रवाह-मार्ग के अनेक चित्र अष्टम सर्ग में प्रस्तुत किये हैं। पर्वत से गिरती हुई गंगा की धारा कभी घाटियों में और कभी पर्वत की कन्दराओं में प्रवेश करती है, जब उस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उस जल धारा में अनेक रंग दिखाई पड़ते हैं जिससे कवि की उत्प्रेक्षायें भी अनेक रूपों में भावाभिव्यंजित हुई हैं। कभी वह जल गिरती हुई विद्युतमाला के समान, कभी हंस पक्षियों के समान, कभी पृथ्वी देवी के हीरक जटित मुकुट के समान प्रतीत होता है। नवम एवं दशम सर्ग में गंगा में नागरिकों और देवांगनाओं तथा ग्राम वधुओं के स्नान का वर्णन पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' का स्मरण दिला देता है। कवि ने कई चित्रों की प्रेरणा उससे ग्रहण की है।

प्रकृति के अनेक आलंवनगत चित्रों का चयन वाल्मीकि रामायण से भी किया गया है। गंगा के तट पर परस्पर विरोधी जीवों का साथ होकर जलपान, हाथियों का स्नान, तट पर वन्दरों का वृक्षों की शाखाओं से लटकना, मेषों का स्नान, शशक समूहों का जलपीकर अधरों को फड़काना इत्यादि चित्र इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार के अनेक चित्रों के कारण यह महाकाव्यत्व के गुणों से युक्त दिखाई पड़ता है।

छन्द-योजना

गंगावतरण की रचना रोला छन्द में हुई है। काव्य के मंगलाचरण में तीन छप्पय, प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक उल्लाला, सर्ग के अन्त में एक दोहा तथा शेष समस्त काव्य में रोला छन्द का प्रयोग किया गया है। महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य में छन्द-योजना की जो परिपाटी है, उक्त काव्य इसके अनुकूल है। खण्डकाव्य के लक्षणानुसार सर्ग के अन्त में छन्द बदलने से काव्य का संगीतात्मक प्रवाह अधिक आकर्षक हो उठता है। गंगावतरण में प्रत्येक सर्ग के अन्त में रोला के पश्चात् आने वाले उल्लाला छन्द से काव्य का सौन्दर्य बढ़ गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसवर्णन

महाकाव्य के विषय में नाट्यशास्त्र के अनुसार 'एकोरसोऽङ्गीकर्त्तव्यो शृंगारो वीर एव वा' की उक्ति प्रसिद्ध है; अर्थात् महाकाव्य में शृंगार और वीर रस में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए किन्तु इस लक्षण का पालन अधिकांश महाकाव्यों में नहीं मिलता। रामचरितमानस में यों तो नवरसों का सुन्दर परिपाक है किन्तु मुख्यता शान्त-रस की ही है। गंगावतरण में वीर, करुण तथा शृंगार के साथ मुख्यतः शान्त रस की योजना है। सगर सुतों द्वारा अश्वमेध-यज्ञ के अन्वेषण प्रसंग में वीर रस, सगर सुतों के भस्म होने के वृत्तान्त द्वारा सगर और उनके परिवार के संताप-वर्णन-प्रसंग में करुण, चतुर्थ अंक में गंगा की उत्पत्ति वर्णन प्रसंग में कुछ स्थलों पर तथा शिव के जटाजूट में गंगा के प्रवेश प्रसंग में और नवम, दशम अंक में ग्राम-वधुओं और देवांगनाओं के स्नानोल्लास के वर्णन में शृंगार रस की योजना है। कपिल मुनि के आश्रम में अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को देखने के अवसर पर तथा गंगावतरण प्रसंग में शिव की सन्नद्धता की कुछ स्थितियों में रौद्र रस का तथा गंगास्तुति प्रसंग में शान्त रस का वर्णन किया गया है। इस प्रकार रसोद्रेक की दृष्टि से यह काव्य खण्ड-काव्यत्व के उपयुक्त है इतना होते हुए भी कवि की दृष्टि रस की अपेक्षा शब्द वैचित्र्य तथा कल्पना की विविधतामें अधिक रमणशील है।

सर्ग-योजना

गंगावतरण की रचना कुल १३ सर्गों में हुई हैं। सर्ग की दृष्टि से इसे महा-काव्य कहा जा सकता है। महाकाव्य में सर्गों का विस्तार जिस रूप में किया जाता है उसी प्रकार इस काव्य में भी सर्गों का विस्तार दिखाई देता है किन्तु वर्णन की दृष्टि से संक्षिप्त होने के कारण इसे महाकाव्य की कोटि में नहीं रख सकते।

उद्देश्य

महाकाव्य के उद्देश्य-सम्बन्ध में अधर्म की पराजय और धर्म के विजय का निर्देश नाट्यशास्त्र में किया गया है किन्तु गंगावतरण के सम्बन्ध में इसे निश्चित रूप नहीं दिया जा सका है। संभवतः इस ग्रंथ को लिखते समय कवि का उद्देश्य गंगा की भक्ति का प्रचार करना रहा होगा परन्तु उक्त ग्रन्थ में भक्ति-पोषक सामग्री का अभाव है। कवि ने काव्य में गंगा का जो रूप उपस्थित किया है वह भक्ति का आलंबन नहीं है। आकाश से गंगावतरण-काल में उनके जिस उग्र रूप का चित्रण किया गया है, वह इसका उदाहरण है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरङ्ग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं ॥
लै स-वेग-विक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौ बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥ ७।८

गंगा का ऐसा स्वरूप उपस्थित करके कवि का काव्योद्देश्य विघ्नित हुआ है। यदि कवि ने गंगा के उदार रूप का चित्र अंकित करके गंगा का ध्यान संसार के आर्त्त प्राणियों की ओर आकृष्ट किया होता तो यह भक्ति के अधिक उपयुक्त होता। ग्रन्थ के अंतिम चरणों में कवि ने गंगा की कृपा का कुछ उल्लेख प्रस्तुत किया है किन्तु वह अपर्याप्त है। भगीरथ की स्तुति सुनकर गंगा देवी प्रसन्न होती हैं, जैसा निम्नांकित छन्द से स्पष्ट होता है—

नृप-अस्तुति सुनि उठी गंग-उर कृपा-फुरहरी।
जल-तल पर लहरान लगी आनन्द की लहरी ॥
वह धुनि मंजुल मधुर धार-कलकल तैं आई।
धन्य भगीरथ भूप धन्य तव पुन्य-कमाई॥ १३।१२

इस समय यदि गंगा के प्रकट होने का वर्णन होता तो वह भक्ति-जागृत करने में अधिक सहायक हो पाता। गंगा से वर माँग कर भगीरथ पापियों के उद्धार की प्रार्थना करते हैं—

पापी पतित स्वजाति-त्यक्त सो-सो पीढ़िन के।
धर्म-विरोधी कर्म-भ्रष्ट च्युत श्रुति-सीढ़िन के ॥
तव जल स्रद्धा-सहित न्हाई हरि नाम उचारत।
ह्वै सब तन मन सुद्ध होहिं भारत के भारत॥ १३।१५

इस प्रकार इस खण्ड-काव्य में कवि द्वारा कथा-बन्ध का मुख्यांश वाल्मीकि रामायण है। नायक भगीरथ धीरोदात्त प्रकृति के हैं। इसकी छन्द योजना, सर्ग-निबन्धन, प्रकृति-वर्णन महाकाव्य की कोटि का है। इतना होते हुए भी सांगोपांग वर्णन के अभाव और उद्देश्य की दृष्टि से इसे खण्डकाव्य कहना ही अधिक उपयुक्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णन-कौशल

आधुनिक काल के मंगलाचरण और रीतिकाल के उपसंहार रूप में स्थित कविवर रत्नाकर के काव्य में रीतिकालीन परंपराओं को आदर्श रूप में अपनाया गया है। इनमें एक ओर श्रृंगारी कवियों की भावुकता, कला और भाषा का अनुसरण है तो दूसरी ओर वर्णन शैली के प्राचीन आदर्शों का ग्रहण भी है। कवि की वर्णन शैली में आवश्यकतानुसार व्यास और समास शैली का प्रयोग मिलता है। अनावश्यक अंशों का संक्षेपीकरण करने की दृष्टि से समास शैली और मार्मिक स्थलों को विस्तार देने के लिए कवि ने व्यास शैली का आश्रय ग्रहण किया है।

यदि इस दृष्टि से हम गंगावतरण काव्य का मूल्यांकन करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि इसका प्रथम-सर्ग काव्य की भूमिका के रूप में लिखा गया है। अयोध्या के राजवंश का वर्णन, सगर की तपश्चर्या, उनके साठ सहस्र पुत्रों की उत्पत्ति, सगर के अश्वमेध यज्ञ की तैयारी, इन्द्र के द्वारा अश्वमेध के घोड़े का अपहरण, अश्वान्वेषण प्रयत्न आदि घटनाएँ बड़े संक्षेप से केवल ३८ छन्दों में प्रथम-सर्ग में वर्णित हैं, ज़िसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि ने घटनाओं की पूर्व-सूचना का प्रयत्न किया है। काव्य प्रभाव को बनाये रखने के लिए जितने विस्तार की आवश्यकता थी उतने का ही ध्यान कवि ने रखा है। सगर का पुत्र असमंज बड़ा निर्दयी तथा अन्यायी था, सगर ने उसे घर से निकाल दिया और उसके पुत्र अंशुमान को युवराज बयाया। वे स्वयं राज्य का त्याग करके अश्वमेध-यज्ञ में संलग्न हुए। इन घटनाओं का वर्णन कवि ने इतिवृत्तात्मक शैली में किया है।

प्रथम-सर्ग में चार छन्द में अयोध्या नगरी का रमणीय वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस वर्णन में कवि ने काल्पनिक चित्रों को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है, जिसमें कवि की प्रतिभा का विलास दिखाई पड़ता है। उपमा और रूपक अलंकारों द्वारा कवि को भावाभिव्यंजना में विशेष सहायता मिली है।

पाँचवें, छठें और सातवें छन्द में सगर के प्रताप का वर्णन है तत्पश्चात् आठवें छन्द से ३८ वें छन्द तक कथा को संक्षेप में निर्दिष्ट किया गया है जो कवि की समास शैली का उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक उदाहरण देखिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भव-वैभव को जदपि भूप-गृह अमित उज्यारौ।
तउ इक सुत कुल-दीप विना सब लगत अँध्यारौ॥
इक दिन मानि गलानि नीर नैननि नृप ढारयौ।
काया कष्ट उठाइ इष्ट-साधन निरधार्‌यौ॥१।१०
हिम गिरि कै प्रस्त्रवन-पार्स्व मुनि-जन-मन-हारी।
सुर - किन्नर - गंधर्व - सिद्ध - चारन - सुखकारी॥
दोउ भामिनि लै संग भूप भृगु-आस्रम आए।
करि तप उग्र सहर्ष वर्ष सत सतत बिताए॥

द्वितीय सर्ग में सगर सुतों का अश्वान्वेषण वर्णन, एवं विशेष रूप से चतुर्थ सर्ग में वृन्दावन का वर्णन कवि ने व्यास शैली में किया है। वृन्दावन के बीच गोवर्धन पर्वत, मनोरम प्रकृति, गोपियों का विहार, गायों-बछड़ों का चरना तथा उनका सौन्दर्य और इन सबके बीच में राधा कृष्ण का समन्वित सुन्दर रूप, इन सबका बड़ा ही विस्तृत वर्णन कवि ने किया है। कवि की व्यास शैली का यह सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार सप्तम और अष्टम सर्ग में स्वर्ग से गंगा के पृथ्वीतल पर अवतरण का वर्णन विशद रूप में व्यास शैली में किया गया है। स्वर्ग से गंगावतरण के समय तीनों लोकों में जो गंभीर निर्घोष सुनाई पड़ता है, उससे जल और स्थल प्रदेश में भयंकर भय का संचार हो उठता है। कवि ने प्रथम इस अवतरण के प्रभाव से उत्पन्न आकाश में देवताओं और राक्षसों की व्याकुलता का वर्णन किया है जो चारों ओर व्याकुल होकर देख रहे हैं। उस समय दिशाओं के हाथी भय के मारे चिग्घाड़ने लगे और वे अपने दाँतों से दिशाओं को दबोच कर भरभरा कर भागने लगे, आकाश मण्डल थरथरा उठा, सूर्य के रथ की गति अवरुद्ध हो गई, चन्द्रमा चकित हो गया, तारक दलों में स्थिरता आ गई, पवन की गति अवरुद्ध हो गई, चारो ओर एक अद्भुत रस का स्थायी भाव छा गया। निम्नांकित पंक्तियों में कवि के वर्णन की कुशलता दर्शनीय है :—

नभ मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब मौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहै कमलासन॥७।६

वर्णन की इस विशदता के कारण कहीं-कहीं भावों की आवृत्ति दिखाई पड़ती है जैसे इसी सर्ग के पाँचवें और सत्रहवें छन्द में एक ही भाव प्रकारान्तर से प्रकट किया गया है :—

× × ×

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दहलि दसा दिग-पाल विकल-चित इत उत धावत ।
दिग्गज दिग दंतन दवोचि दृग भभरि भगावत ॥७।५

× × ×

दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय थरके
धुनि प्रति धुनि सो धमकि धराधर के उर थरके ।

कहीं-कहीं किसी छन्द की कुछ पंक्तियाँ एक दूसरे से मेल खाती हैं जैसे—

विन्ध्य-हिमाचल-मलय मेरु मंदर-हिय हहरे ।

× × ×

धुनि प्रति धुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके ॥

× × ×

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माँहि घहरति घुसि घूमति ।
प्रवल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति ॥

× × ×

इहि विधि घाटिनि दरिनि कंदरनि पैठति निकसति ।
कहूँ सिमिटि घहराति कहूँ कल-धुनि-जुत विकसति ॥

कवि की व्यास शैली का उदाहरण नवम से लेकर द्वादश सर्ग तक प्राप्त होता है जिसमें कवि ने गंगागम के मार्ग का विशद वर्णन किया है । कहीं देव-दनुज, गंधर्व-यक्ष और किन्नरों का गंगा के अद्भुत कौतुकपूर्ण दृश्य का अवलोकन, कहीं नागरिकों का अमृत के समान गंगाजल का स्पर्श पान और मज्जन, कहीं तीव्र वेग से बहने वाली गंगा की धारा में अटपटे खेल, कहीं सुन्दरियों की मुसकान भरी जल क्रीड़ा, कहीं उनके द्वारा गंगा की षोडशोपचार पूजा और आरती, कहीं घाट पर श्रद्धापूर्वक स्नान, ध्यान और तर्पण की कार्यतत्परता, कहीं कवियों द्वारा गंगा के अद्भुत दृश्यावलोकन द्वारा आंतरिक भावों का काव्य निवन्धन है । ऐसे अनेक दृश्यों का विस्तृत वर्णन कवि द्वारा बड़े ही रोचक और स्वाभाविक शब्दावली द्वारा प्रस्तुत किया गया है । इन चित्रणों की सर्वाधिक विशेषता इनकी चित्रात्मकता है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने गंगा-तट के सम्पूर्ण नागरिक क्रिया-कलापों का बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन करने के पश्चात् उनकी एक-एक क्रिया का अत्यन्त स्वाभाविक रूप चित्रित किया है। एक चित्र देखिये-इसमें एक व्यक्ति दूसरे पर जल के छींटे डाल रहा है, दूसरा व्यक्ति उसे पकड़ कर पीछे से आगे की ओर धक्का दे रहा है, कोई व्यक्ति कुछ आधार पाकर घुटने पर्यन्त जल में उतरता है किन्तु जल प्रवाह की तीव्रता के कारण उसके पैर जल में पूर्णतया स्थिर नहीं रह पाते इसलिए वह हड़बड़ा कर बाहर निकल आता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोउ सीतल-जल छींट छपकि काहू पर छिरकत।
कोइ काहू कौ पकरि पीठि पाछैं हटि हिरकत॥
कोउ अधार कछु धारि धँसत जानू लगि जल मैं।
हरबराइ पर कढ़त थमत नहिं पूर प्रबल मैं॥ ९।१२

अनुभावविधान

रत्नाकर की वर्णन शैली की प्रमुखता उनके अनुभाव-विधान में दिखाई देती है। यों तो संख्या गिनने के लिए अनेक कवियों ने इसकी योजना की है किन्तु परंपरा पालन रूप में ही। 'उद्धवशतक' इस दृष्टिकोण से अधिक सफल है किन्तु गंगावतरण भी कम नहीं। नवम सर्ग का निम्नांकित वर्णन देखिये जिसमें गंगा के जल में कोई स्नान कर रहा है, कोई तैर रहा है कोई जल के भीतर दौड़ रहा है, कोई सूर्य को अर्घ्य दे रहा है, कोई हर हर का उच्चारण कर रहा है, कोई सर्दी के मारे जल की चुभकी लेकर भाग जाता है और कोई परिहास के निमित्त, भागने वाले को रोक रहा है। चार पंक्तिओं में इतने सारे कार्य कलापों को कवि ने बड़ी स्वाभाविकता से अंकित किया है—

कोउ न्हात कोउ तिरत कोऊ जल अंतर धावत।
रविहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर-धुनि लावत॥
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत विलोकत।
कोउ परिहास-विलास-हेत ताकौ गहि रोकत॥ ९।१५

गंगा बड़े वेग से आकाश से नीचे उतर रही हैं, चारो ओर महामेघों के एक साथ गर्जने का सा घोर शब्द भर गया है। देवता भयभीत हो गये हैं, नीचे सुर सुन्दरियाँ भयभीत होकर आँखें फाड़ फाड़कर घबराई हुई देख रही हैं—

सुर सुन्दरी ससंक वंक दीरघ दृग कीने।
लगी मनावन सुकृत हाथ कानन पर दीने॥

रत्नाकर जी की दृष्टि इतनी अचूक है कि वे पशुओं की भयमुद्राओं को भी अंकित करने में अपनी कुशल कला का परिचय देते हैं, गंगावतरण के समय भयंकर स्वर से आतंकित होकर पशु अपने पिछले पैरों के बीच पूँछ दबाकर कान ऊपर उठाये भागने लगते हैं—

विसद बितुंड दवाइ कुंडलित सुँड भुसुंडनि।
भय भरि नैन भ्रमाइ धाइ पैठत जल कुंडनि।
चीते तिंदुवे बाघ भभरि निज आध भुलाये।
जित तित दौरत दावि पुच्छ अरु कान उठाये। ८।३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पक्षियों के अनुभावों का भी वर्णन किया गया है। अंशुमान की वाणी सुनकर गरुड़ भी अपनी ग्रीवा हिलाने लगे--

अंसुमान की मंजु बचन-रचना चतुराई।
सुनि खगपति मति-सींव फड़कि गुनि ग्रीव हलाई ॥

चित्रात्मकता

रत्नाकर जी की वर्णन शैली की प्रमुख विशेषताओं में उनके चित्र प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता भी एक है। ऐसे स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि स्वयं काव्य के मंच से दूर हट कर खड़ा हो जाता है तथा उन पुरुषों तथा स्त्रियों को सारी विशेषताओं के साथ हमारे सामने लाकर खड़ा कर देता है, जिनके भावों की व्यंजना अपेक्षित है। ऐसे चित्र इतने पारदर्शक हैं कि इनमें से ऊपरी आवरण के भीतर छिपे हुए हृदय को स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐसे चित्रों के तीन भाग किए जा सकते हैं। किसी भाव के लिए आलंबन आवश्यक होता है पर सब भावों में आलंबन का महत्त्व एक सा नहीं होता है। श्रृंगारादि रसों में व्यंजना, आलम्वन के प्रत्यक्षीकरण पर ही अधिक निर्भर रहती है। कुछ रसों में आलम्वन का महत्त्व अपेक्षाकृत कम होता है। ऐसे अवसरों पर कवि ने जो चित्र उपस्थित किए हैं, उन्हें आलम्वन-चित्र कह सकते हैं क्योंकि इनमें कवि का उद्देश्य आलम्वन का वाह्य-स्वरूप उपस्थित करना मात्र रहता है। इनके सहारे पाठकों के हृदय में कुछ भाव उत्पन्न होते हैं। दूसरे प्रकार के चित्रों को हम भावचित्र कह सकते हैं। इनमें कवि आलंबन की वाह्य रूप रेखा प्रस्तुत करने के साथ ही हृदय की भावधाराओं को भी प्रत्यक्ष कर देता है। भावचित्रों के भी दो रूप मिलते हैं एक तो वे जिसमें सात्विक अनुभावों के विस्तृत विवरण के साथ चित्र उपस्थित किए जाते हैं और दूसरे वे जिसमें कुछ सूक्ष्म परन्तु सार्थक संकेतों के सहारे भावचित्रों को प्रस्तुत किया जाता है।

आलंबनगत चित्र

आलंबन-चित्र-रेखाओं में विशेष रूप से श्रृंगार-रस के आलंबन में शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य इन सात्विक अलंकारों का सन्निवेश आचार्यों द्वारा किया गया है। इन सातों के साथ ही भाव, हाव और हेला इन अंगज अलंकारों को भी लिया जा सकता है। इन सबके चित्रण द्वारा कवि अपने चित्र को पूरा करता है। इनका सम्बन्ध विशेष रूप से श्रृंगार रस से ही है। यद्यपि इनका विशेष चमत्कार स्त्रियों में ही स्वीकार किया गया है

२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु हिन्दी कवियों ने श्रीकृष्ण को नायक मानकर उन्हें ही आलंवन रूप में प्रतिष्ठित किया और इन चेष्टाओं तथा स्वाभाविक विशेषताओं का वर्णन नायकों में भी होने लगा। गंगावतरण के चतुर्थ-सर्ग में श्री कृष्ण राधिका की जुगल जोड़ी का शृंगार पूर्ण चित्र प्रस्तुत है—

इक इक बाँहि उमाँहि किए गलबाँहि बिराजैं।
इक इक कर बड़भाग वनज बंसी कल भ्राजैं॥
मनु तमाल पर सोनजुही की लसै माल वर।
स्याम तामरस-दाम प्रफुल्लित सोनजुही पर॥ ४।२१

कवि ने यहाँ इक्कीसवें छन्द से तेइसवें छन्द तक आलंवनगत सम्पूर्ण-चित्र बड़ी कुशलता से अंकित किया है। राधिका जो का वस्त्र नीला और श्रीकृष्ण जी का पीला है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो एक ने दूसरे की अंग कान्ति से अपने अंगों को सुसज्जित किया है, दोनों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार दिव्य आभूषण धारण किए हैं जो उनकी अंग कान्ति से दीप्तिमान् होकर सूर्य के समान चमक रहे हैं। उनके वक्षस्थल पर पारिजात पुष्प की माला सुशोभित है। उनके सुन्दर मुकुट पर जब चन्द्रमा की चाँदनी पड़ती है तो अनुपम शोभा बिखर जाती है और मुकुट के ऊर्ध्व भाग में जटित रत्न बड़ी तीव्रता से प्रकाश फेंकते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानों रत्न सिर पर चढ़कर अहंकार से इतरा रहे हों।

सात्विकभाव चित्र

इसी चित्र की सूक्ष्मता चौबीसवें छन्द में अंकित की गई है, जिसके द्वारा कवि किसी पात्र विशेष के हृदय पर पड़ने वाले भावों को अंकित करता है। ऐसे चित्रों को कवि बड़ी सावधानी से अंकित करता है। राधा कृष्ण की प्रेम-मयी युगल जोड़ी, रस-विभोर होकर एक दूसरे के स्पर्श से पुलकित हो उठी है ऐसा प्रतीत होता है मानो नीली-पीली मणियों में प्रकाश के स्थान पर रस के अंकुर निकल आये हों। वे दोनों भिन्न-भिन्न लीलाओं का स्मरण करके रोमांचित हो रहे हैं, मानों सुख के सागर में आनन्द की तरंग दौड़ रही हो—

बिपुल पुलक दुहूँ गात परसपर सरस परस के।
पीत नील मनि माँहि मनौ अंकुर सुचि रस के॥
सुधि करि बिविध बिलास फुरति अंग-अंग फुरहरी।
मनु सुखमा के सिंधु उठति आनन्द की लहरी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ सात्विक अनुभाव रोमाञ्च द्वारा बड़ी उच्च कोटि की भावाभिव्यंजना की गई है।

अश्वमेध-यज्ञ के अश्व-हरण के पश्चात् जब अंशुमान को अथक प्रयत्न के अनन्तर सगर सुतों के भस्म होने का हृदय-द्रावक समाचार ज्ञात होता है, तो वह स्तब्ध रह जाता है। उनके लिए जल-दान की कोई व्यवस्था न देखकर गरुड़ द्वारा उपदिष्ट होकर बड़ी कठिनाई से नगर को लौट आता है। जब यज्ञशाला में प्रविष्ट होता है तो राजा सगर को देखकर व्याकुल होकर उनके चरणों से लिपट जाता है। राजा भी व्याकुल होकर उसे अपने वक्षस्थल से लगा लेते हैं, किन्तु ज्योंही वे प्रेमपूर्वक पुत्रों की कुशलता के विषय में प्रश्न करते हैं, अंशुमान की विचित्र दशा हो जाती है, वह उस करुण वृत्तान्त के वर्णन में असमर्थ होकर अपना हृदय थाम लेता है, वाणी अवरुद्ध हो जाती है, हिचकियों की गुफा में शब्द अवरुद्ध हो जाते हैं, नेत्रों से आँसू गिरने लगते हैं और बहुत कठिनाई से वह करुण समाचार कह पाता है। कवि ने यहाँ सात्विकों के माध्यम से बड़ा स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। ये भाव चित्र अनूठे हैं—

परयौ करेजौ थामि थहरि त्यौं रोइ कुंवर वर।
निकसे सकसि न वचन भयौ हिचकिनि गह्वर गर॥
आँसू ढारि भरि साँस सचिव-सुत तव अगुवाओ।
काहू विधि सविषाद विषम संवाद सुनायौ॥ ५।११

ठीक ऐसा ही चित्र उद्धव-शतक में कवि ने अंकित किया है, जिसमें श्रीकृष्ण उद्धव से व्रजांगनाओं के लिए सन्देश कहने के लिए प्रस्तुत होते हैं किन्तु वे कहने में असमर्थ हैं—

× × ×

गहवर आयो गरो भभरि अचानक त्यों।
प्रेम परयो चपल चुचाई पुतरीनि सौं॥
नैकु कहि वैननि, अनेक कहि नैननि सौं।
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥

मूक भाव चित्र

अनेक भाव ऐसे हैं जिनमें सात्विक अनुभाव आदि उतने स्पष्ट नहीं होते परन्तु हृदय की भावनाओं को कुछ साधारण सार्थक चेष्टाओं द्वारा प्रकट किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। ऐसे चित्रों को प्रस्तुत करते समय कवि को निरीक्षण की विशेष सावधानी रखनी पड़ती है, अनुभावों से समन्वित चित्रों में तो वह परम्परा से सहायता भी ले सकता है परन्तु ऐसे चित्रों को अंकित करते समय उसे अपने पर ही निर्भर रहना पड़ता है। महाराज सगर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा अचानक विलुप्त हो गया है, सारा यज्ञ-कार्य विघ्नित हो गया है। सभी लोग आश्चर्य चकित होकर एक दूसरे का मुँह देख रहे हैं—

× × ×

परयौ रंग मैं भंग दंग ह्वै सकल विचारत।
मूक भाव सौं एक एक कौ वदन निहारत ॥१।३०

इस समाचार को सुनकर उपाध्यायों के मुँह भी लटक जाते हैं, वे सशंकित होकर अपने मस्तक को ऊँचा करके भौंहें टेढ़ी कर लेते हैं किन्तु कुछ सोच नहीं पाते :—

उपाध्याय गन धाइ धवल आनन लटकाए।
त्रिकुटी ऊँचै ससंक वंक भ्रकुटी भमराये ॥१।३१

× × ×

इसी प्रसंग में रौद्र रस के अनुभावों का चित्र है, जिसमें राजा सगर अश्वहरण के वृत्तान्त से क्रुद्ध होकर अपनी भुजायें फड़काते हैं और उनकी तेवरी चढ़ जाती है :—

सुनि अति अनहित वैन भए नृप नैन रिसौंहैं।
फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौंहैं।१।३२

आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण

गंगावतरण में कवि के वर्णन की सबसे अधिक विशेषता—जिसे हम विशिष्ट शैली के अन्तर्गत ले सकते हैं, वह है प्रकृति के सूक्ष्म स्वरूप का संश्लिष्ट चित्रण। इन चित्रों में कई स्थानों पर वाल्मीकि रामायण का विशेष प्रभाव है। कवि ने गंगावतरण के अवसर पर जिन बिंबों को ग्रहण किया है वे उसकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के परिचायक हैं। इनका विस्तृत वर्णन प्रकृति चित्रण के प्रसंग में किया जायगा। यहाँ कुछ संक्षिप्त दृष्टि डाली जा सकती है—इस दृष्टि से इस खण्ड काव्य का सप्तम और अष्टम सर्ग बेजोड़ हैं। गंगावतरण के समय का एक चित्र देखिए—जिसमें गंगा के जल की फुहार पर्वत पर इस प्रकार फैल गई है मानों पर्वत पर झीने बादलों की छटा हो, उस पर सूर्य किरणों के पड़ने से विचित्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सतरंगी शोभा दिखाई पड़ती है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो दिग्-वधुयें गंगा स्नान करके दिव्याभूपणों से सुसज्जित होकर सतरंगी साड़ी पहनकर आकाश मार्ग से उतर रही हों अथवा सूर्य ने गंगागम के मार्ग में बहुत से रंग विरंगे रेशमी वस्त्रों की वंदनवार बाँध दी हो :—

उड़ति फुही की फाव फवति फहरति छवि छाई ।
ज्यौं परवत पर परत झीन बादर दरसाई ॥
तरनि-किरन तापर विचित्र बहु रंग प्रकासै ।
इंद्र धनुप की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै ॥७।३३

× × ×

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हे निज अंगी ।
नव भूपन नव-रत्न-रचित सारी सतरंगी ॥
गंगागम-पथ माँहि भानु कैंधों अति नीकी ।
बाँधी वंदनवार विविध बहु पटापटी की ॥७।३४

इस प्रकार के अनेक चित्रों से गंगावतरण परिपूर्ण है। इन चित्रों द्वारा कवि की प्रतिभा का उत्कृष्ट विलास दर्शनीय है। कवि की वर्णन शैली में व्यास और समास शैली के माध्यम से आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र अंकित किये गये हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावाभिव्यंजना

रस-वर्णन

शृङ्गार-रस

पण्डित राज जगन्नाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' द्वारा काव्य में रस की जो प्रतिष्ठा की है और आचार्य मम्मट द्वारा रस प्रधान काव्य की व्यंजकता के कारण उसे उत्तम काव्य की कोटि में जिस रूप में स्थान दिया गया है, उसका पूर्ण परिपाक गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास की रचनाओं तथा भक्तियुग के अधिकांश कवियों की रचनाओं में मिलता है। रीतिकाल में तो शृङ्गार-रस ही काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय बना, जिसके आधार पर उस काल का नाम ही शृङ्गार-काल हुआ। इन कवियों ने शृङ्गार-रस के अङ्गों उपाङ्गो का इतना विस्तार किया है कि मर्यादा की सीमायें टूट गईं और कविता-कामिनी रस-सिन्धु को छोड़कर अलंकार-जाल में उलझ गई। रत्नाकर का काव्य रीतियुग की कल्पना-प्रवणता लिए हुए है किन्तु इनमें शृङ्गार के अमर्यादित रूप की अपेक्षा संश्लिष्ट और भावाभिव्यंजक चित्रों की प्रधानता है। विशेष रूप से गंगावतरण तो अपने प्रकरण के अनुसार भक्ति-प्रधान काव्य ही है किन्तु शृङ्गार का रूप इसमें मुख्यतया चतुर्थ सर्ग में राधाकृष्ण लीला प्रसंग में सप्तम सर्ग के अंतिम चरणों में तथा दशम और एकादश सर्ग में युवतियों के स्नान-क्रीड़ा प्रसंगों में उपलब्ध होता है।

चतुर्थ सर्ग में राधाकृष्ण की युगलमूर्ति का प्रेममय चित्र कवि ने किसी चित्रकार की तूलिका से चित्रित किया है, कवि की यह कल्पना उसकी भक्ति-भावना का आनन्दमय स्रोत है जिसमें गोलोक में लीला के दर्शनार्थी देव-गण भी बहते हुए दिखाई पड़ते हैं। राधाकृष्ण की प्रेममयी मूर्ति दर्शनीय है, वे एक दूसरे को प्रेमानन्दोन्मत्त दृष्टि से देख रहे हैं। प्रेम का मूक अभिनय चल रहा है, वे दोनों एक दूसरे की अंग कान्ति से दीप्त होकर हरे रंग के प्रतीत हो रहे हैं और प्रसन्नता उमड़ पड़ी है—उनकी एक ही रुचि एक ही प्राण और एक ही रस में तल्लीनता है, जो उनके भावों से प्रतीत हो रही है:—

दोउ दोउनि कौ निरखि हरषि आनंद-रस चाखत।
दोउ दोउनि की सुरुचि मूक भावन सौं राखत॥
दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इकरंग हरियाने।
इक मन इक रुचि एक प्रान इक रस सरसाने॥ ४।२५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रसंग में संयोग शृङ्गार के कई चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका वर्णन कवि ने २० वें छन्द से २६ वें छन्द तक किया है। निश्चय ही कवि द्वारा वर्णित इस शृङ्गार को भक्ति-रस के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इस लीला को देखकर सभी देवगणों के मन में आनन्द छा जाता है। विशेष रूप से भगवान् शंकर में तो आनन्द की अमृत धारा उमड़ पड़ती है। वे डमरू बजा कर नृत्य करना आरंभ कर देते हैं। इधर सरस्वती भी विमुग्ध होकर वीणा की मधुरिमा में सबको डुबो देती हैं।

इसी प्रकार गंगा का सुन्दर, लज्जायुक्त युवती के रूप में प्रकट होकर श्रीकृष्ण की ओर लुब्ध लज्जामय प्रेम दृष्टि से देखना और गंगा के रूप सौन्दर्य की ओर श्रीकृष्ण की विमुग्ध दृष्टि, भक्ति रस-रंजित शृङ्गार का आनन्द देती है। इसे निम्नांकित छन्द में देखिये :—

लागी ललकि लुगाइ स्याम सुन्दर-मुख जोहन।
निज जोहन कै भाय विस्व मोहन-मन-मोहन॥
ताको रूप अनूप अकथ गुन भाव लजौंहैं।
लखि सोउ सुख सरसाइ भए रस-बस ललचौंहैं॥

राधा के रोष का स्वाभाविक वर्णन देखिये—

निरखि नीठि निज ओर परति दुहुँ-दीठि कनौड़ी।
अनख-घटा अति सघन घूमि राधा-उर औंड़ी॥
उठी चमक चित भए सजल दृग-छोर छबीले।
प्रगटे सब्द कठोर भाव बररो तरजीले॥४।४२–४३

सप्तम सर्ग में भगवान् शंकर को अनुपम शोभा को देखकर गंगा का अनुपम सौन्दर्य-अभिमान, जो वेग की तीव्रता में व्याप्त था, समाप्त हो जाता है और उस मनोहर रूप को देखकर उनके प्रवाह का वेग शान्त हो जाता है। शरीर अपने वश में नहीं रहता, क्रोध समाप्त हो जाता है और कुछ और ही रंग चढ़ जाता है। जहाँ रोष की रूक्षता थी, वहाँ प्रेम की स्निग्धता छा जाती है। यहाँ भी शृंगार रस की छटा है :—

भई थकित छवि छकित हेरि हर रूप मनोहर।
ह्वै आनहि के प्रान, रहे तन धरे धरोहर॥
भयौ कोप को लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ विक्षोभ था वहाँ प्रेम का रोमांच और जहाँ उद्वेग था वहाँ प्रेम की धड़कन जहाँ हरहराने का भयंकर स्वर था वहाँ 'हर' 'हर' (शंकर, शंकर) की ध्वनि उठने लगी—

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं॥
भयौ वेग उद्वेग पैंग छाती पर धरकी।
हर हरान धुनि विघटि सुरट उघटी हर-हर-की ॥७।३६—३७

कवि ने सप्तम सर्ग में ३६ वें छंद से ४१ वें छन्द तक शिव-और गंगा के मनोहर अलौकिक प्रेम का वर्णन वड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

दशम और एकादश सर्ग में कवि ने गंगा तट पर जल भरने के लिए आई हुई ग्राम बधुओं का चित्र अंकित किया है। वस्तुतः इन चित्रों की प्रेरणा पर आधुनिक युग का प्रभाव है और जो वर्णन कवि ने किया है वह पौराणिक है। इन वर्णनों पर रीतिकालीन कवियों का स्पष्ट प्रभाव है। ग्राम वधूटियाँ गंगा तट पर घट-पूरण के लिए गान गाती हुई चली आ रही हैं:—

ग्राम-बधूटी जुरतिं आनि तट गागरि लै-लै।
गावतिं परम पुनीत गीत धुनि लावति जै जै॥
धारे सहज सिंगार गात गोरे गदकारे।
विहँसत गोल कपोल लोल लोचन कजरारे॥ १०।१७

निम्नांकित छंद में अनुभावों द्वारा शृङ्गारिक चित्र वड़ी स्वाभाविकता से अंकित किया गया है।

कहुँ मिलि जुलि दस पाँच नाच रंग रुचिर रचावतिं।
हूढ़ो दै इठलाइ झमकि झुकि लंक लचावति॥
कोउ गोरुनि जल प्याइ न्हाइ परिखति पनघट पर।
कोउ गागरि भरि चलति सीस धरि कोउ कटि-तट पर॥ १०।२०

इसमें ग्रामवधुओं के नृत्य का जो चित्र अंकित किया गया है उस पर प्रादेशिक प्रभाव है।

हास्य-रस

गंगावतरण की कथावस्तु में हास्य का प्रसंग कहीं नहीं है, किन्तु कवि ने अपनी उद्भावना शक्ति से दो स्थलों पर शिष्ट हास्य की योजना बड़ी कुशलता से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंकित की है। छठें सर्ग में सूर्यवंशी राजा भगीरथ को कठोर तपस्या का वर्णन है। जब उनकी कठोर तपस्या से सारी पृथ्वी तप्त हो उठी, तब एक दिन चतुरानन ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा। भगीरथ के मन में कोई कामना नहीं थी, न भोजन की, न वस्त्र की, न स्त्री की, न धन वैभव की, न स्वर्ग के सुख की, यहाँ तक कि उन्होंने मुक्ति की भी याचना नहीं की। उन्होंने, उस समय अपने उदार दाता से एक 'चुल्लू भर जल' की याचना की। इस 'चुल्लू भर पानी' द्वारा कवि ने शिष्ट हास्य की योजना की है, जिसे उस समय चतुर ब्रह्मा जी बड़ी कुशलता से समझ गये और उनकी प्रशंसा करने लगे—

असन, बसन वर वाम धाम भव-विभव न चाहैं।
सुरपुर-सुख विज्ञान मुक्ति हूँ पै न उमाहैं॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरवस-दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चुल्लू भर पानी॥ ६।१८
यह सुनि मृदु मुसुकाइ चतुर चतुरानन भाष्यौ।
धन्य धन्य महिपाल मही-हित पर चित राख्यौ॥ ६।२०

षष्ठ सर्ग में ही भगीरथ की कठोर तपस्या से प्रसन्न, भगवान शंकर की भक्त-वत्सलता के प्रसंग में शिष्ट हास्य की संक्षिप्त योजना है। अपने भक्त की कठोर तपस्या से भगवान् शंकर का हृदय करुणा से परिपूर्ण हो जाता है और वे इतनी व्याकुलता से भगीरथ के पास पहुँचते हैं कि उस दिन भाँग छानना भी भूल जाते हैं, क्योंकि वरदान देने के लिए उनका हृदय उमड़ पड़ा था—

तब तजि अचल समाधि आधि-हर शंकर जागे।
निज-जन-दुख मन आनि कसकि करुना सौं पागे॥
आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहिं छानी।
कृपा-कानि वरदान-देन-हित हिय हुलसानी॥ ६।२९

नवम और दशम सर्ग में नागरिकों द्वारा गंगा जल के स्नान-कौतुक में अनुभावों द्वारा हास्य रस का वर्णन देखिए—एक नागरिक गंगा जल का पान कर रहा है दूसरा कुछ स्थान देखकर थोड़ा ठहर रहा है किन्तु उसके पीछे विनोद-वश दूसरा नागरिक उसे धक्का देकर जल की ओर ठेलता है। इस प्रकार कोई भाग रहा है और कोई दौड़कर उसका पीछा कर रहा है—

× × ×

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोउ ठमकत गहि ठाम ठठोली करि कोउ ठेलत ।
कोउ भाजत छल छाइ धाइ कोउ ताहि पछेलत ॥ ९।११

× × ×

कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल अंतर धावत ।
रविहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर-धुनि लावत ।
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत विलोकत ।
कोउ परिहास-विलास-हेत ताकौ गहि रोकत ॥

गंगा-जल में स्नान के समय युवतियों की प्रसन्न मुद्रा का एक स्वाभाविक चित्र देखिये, जो जल में प्रविष्ठ होकर हँस रही हैं, क्योंकि किसी की एड़ी तट पर ही गंगा की रेत में धँस गई है। कोई मुख को जल से धोकर अपने वस्त्रों पर ही पानी छिड़क रही हैं—

कोउ पैठति जल हँसति धँसति एँड़ी कोउ तट पर ।
कोउ मुख पानि पखारि वारि छिरकति निज पट पर ॥ १०।१९

× × ×

करुण रस

करुणा मानव-जगत् की सद्वृत्तियों का मूलाधार है। जैसे निशा के अन्धकार में व्यक्तियों का भेद-भाव तिरोहित हो जाता है, उसी प्रकार दुःख की छाया पड़ने पर शत्रु और मित्र का अन्तर मिट जाता है और इस अन्तर के मिट जाने पर हृदय में जो समवेदना का भाव उत्पन्न होता है वही अन्ततः करुणा के रूप में प्रतिफलित होता है। इतना होने पर भी इष्टजनों के अनिष्ट की आशंका और अनिष्ट से करुणा का वेग अधिक तीव्र होते देखा जाता है। इसी कारण कवि कला में वेदना का चित्र अंकित करने के पूर्व ऐसे पात्रों की अवतारणा की जाती है जो अपनी सद्वृत्तियों से हमें वशीभूत कर लेते हैं और इस प्रकार वे हमारे प्रिय-पात्र बन जाते हैं। इन पात्रों के कष्टों को देख कर हमारे मन में जो दुःख उत्पन्न होता है, वही करुण-रस का मुख्य उपादान है।

रत्नाकर के गंगावतरण में करुण-रस का प्रसंग तृतीय सर्ग के मध्य में और पंचम सर्ग में विशेष रूप में सन्निविष्ट है। महाराज सगर का पौत्र अंशुमान अपने साठ हजार पितरों के साथ अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े का पता लगाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए पाताल लोक में पहुँचता है, वहाँ गरुड़ द्वारा उसे अपने पितरों के कपिल कोपाग्नि में भस्म होने का समाचार मिलता है जिससे उसके नेत्रों से दुःख के कारण आँसुओं की सरिता वह निकलती है। वह जैसे-जैसे उस भस्म राशि को देखता है, पछाड़ खा खा कर गिरने लगता है। कवि ने यहाँ अनुभावों द्वारा करुण रस का सफल चित्रांकन किया है—

× × ×

अंसुमान सुनि समाचार सब अति दुख पाग्यौ।
लखि लखि छार पछार खाइ विलपन लुठि लाग्यौ ।। ३।१५

उसका रुदन पहले तो आंगिक चेष्टाओं द्वारा करुण दृश्य उपस्थित कर देता है पश्चात् वह उनके अनेक क्रिया कलापों का स्मरण कर आँसू बहाता है, कभी वह अपने पितरों के उस स्नेह का वर्णन करता है जिससे वे कभी उसे उदास नहीं देख सकते थे कभी केसिनी और सुमति के अगाध दुःख की कल्पना कर दुःखी होता है—

सके न देखि उदास कबहुँ तुम बदन हमारौ।
बिलकत आज विलोकि क्यों न कर गहि बुलकारौ ।।
खेलन खोरि न दियौ हमें तुम धूर धुरेटे।
सो अब आपुहिं आइ छार-रासिनि मैं लेटे ।। ३।१७
पठ्यौ हमैं भुआल तात सुधि लेन तिहारो।
कहँ कहा संवाद जाइ हम मर्म विदारौ ।।
सुनतहिं ताकी कौन दसा दारुन ह्वै जैहै।
सुमति केसिनी की विषाद-मरजाद नसैहै ।। ३।१८

पंचम सर्ग में अंशुमान सगर सुतों की मृत्यु का समाचार लेकर यज्ञशाला में प्रवेश करता है जहाँ उसके पितामह यज्ञ-समापन के लिए अश्वमेध यज्ञ के घोड़े ओर अपने पुत्रों की प्रतीक्षा एक लम्बी अवधि से कर रहे थे किन्तु ज्योंही वह राजा की जिज्ञासा भरी दृष्टि देखता है, समाचार की शून्यता से उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह व्याकुल होकर राजा के चरणों से लिपट जाता है, राजा उसे वक्षस्थल से लगा लेते हैं। उनका प्रश्न सुनते ही वह अपना हृदय थाम लेता है—

परची करेजौ थामि थहरि त्यौं रोइ कुंअर बर।
निकसे सकसि न बचन गयौ हिचकिनि गद्गर गर ।।
आँसू ढारि भरि साँस सचिव-सुत तब अगुवाऔ।
काहू विधि सविषाद विषम संवाद सुनायौ ।। ५।११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारो ओर शोक का सागर उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण उत्साह पर पानी फिर गया और धैर्य की मर्यादा नष्ट हो गई।

उमड़्यौ सोक-समुद्र भई विप्लुत मख-साला।
बड़वागिनि सी लगन लगी जज्ञागिनि ज्वाला॥
गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनन्द पर पानी।
बढ़ी पीर की लहर धीर-मरजाद नसानी॥

उस समय तो शोक का ऐसा कुहराम मच गया कि सभी लोग सिर पीटने लगे और ऐसा रुदन विलाप हुआ मानो वरुणदेव अनेक रूप धारण कर नाच रहे हों, इधर रानियों की ऐसी दशा हो गई कि मानों मछलियाँ माजा खाकर छटपटा रही हों—

लगे सकल सिर धुनन कांड करुना कौ माच्यौ।
मनु बनाइ बहु वपुष वरुन तिहिं मंडप नाच्यौ॥
लागी खान पछाड़ धाड़ मारन सब रानी।
मानहु माजा मज्जि तलफि सफरी अकुलानी॥ ५।१३

शोक की अतिशयता से अंगों की चेतना विलुप्त हो जाती है और शरीर जड़वत् हो जाता है, नेत्रों के आँसू सूख जाते हैं, मुख मंडल पर कोई भाव न आकर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी का गाँव ही उजड़ गया हो। इस विषम अवस्था का चित्र महाराज सगर के दुःख रूप में कवि ने अंकित किया है—

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराये।
वज्राघात सहस्र साठ संगहि सिर आये॥
कढ़्यौ कंठ नहिं बैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
आनन भाव विहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ॥ ५।१४

इस प्रकार इस काव्य में करुण-रस का अवसरानुकूल स्वाभाविक वर्णन अनुभावों के माध्यम से किया गया है। महाराज सगर की अवर्णनीय दशा को देखकर यज्ञशाला के सम्पूर्ण मुनि-गण शोक से व्याकुल हो गये और उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे, कोई उनके मलिन मुख को देखकर उनकी दशा की परीक्षा करता था कोई अभिमन्त्रित जल की छींटें देकर उनकी मूर्छा दूर करने का प्रयत्न करने लगा। उसी समय उनके गुरु ने उनकी विषम दशा का अनुमान करके अंशुमान के हाथ से राजा के अंगों का स्पर्श कराया। वह करुण-क्रन्दन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता हुआ राजा के अंगों से लिपट गया। धीरे-धीरे उसके धड़कते हुए हृदय के स्पर्श से मेघ गर्जन से बजने वाले तंत्री के स्वर की भाँति राजा की प्राण चेतना उनके मुख मण्डल पर लहरा उठी। उन्होंने ज्योंही नेत्रों को खोला, गुरु वशिष्ठ ने महाराज सगर से—कहा राजन्! आप अपने नाती को देखकर धैर्य धारण करें। यह सुनकर राजा के हृदय से करुणा फूट पड़ी—वे करुण भाव से रोने लगे। इस प्रसंग का वर्णन कवि ने बड़ी निपुणता से किया है—

× × ×

अंसुमान कौं पकरि पानि नृप अंग लगायौ।
करुणा-क्रन्दन करत कुंवर कंपथ लपटायौ॥ ५।१७

लहि सन्निधि समसील पूत के धरकत हिय की।
अनुकंपित कछु भई सिरा नरपति जग-प्रिय की॥

ज्यौं कोउ तंत्री-वाज उठत कछु गाजि गमक सौं।
सम-सुर सात्म्य-समीप-वाद की नाद धमक सौं॥

सनै सनै पुनि परन लगीं नरपति की पलकैं।
आनन पर लहरान लगीं प्राननि की झलकैं॥

तब वशिष्ठ इमि कह्यो नृपति निरखौ निज नाती।
काकी यह असमंज कुंवर की संपत थाती॥ ५ १८-१९

× × ×

यह सुनि करुना-भाव भूरि उर अंतर जागे।
ह्वै कातर विललाइ फूटि नृप रोवन लागे॥ ५।२०

× × ×

वीर और रौद्र रस

वीर और रौद्र रस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। वीर का स्थायीभाव उत्साह और रौद्र का क्रोध है। उत्साह और क्रोध दोनों एक दूसरे के सहचारी हैं। क्रोध के बिना न तो उत्साह में शक्ति आ सकती है और न उत्साह के अभाव में क्रोध ही उत्पन्न हो सकता है। इसी कारण ये दोनों रस एक दूसरे के सहचारी हैं। ये दोनों अपनी सहगामिता में ही सफल होते हैं। ऐसा करने से एक से दूसरे को परिपुष्ट होने की सुविधा प्राप्त होती है।

वीर रस अधिक व्यापक है। यह कई रूपों में उपस्थित होता है। केवल युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने के प्रसंग में ही वीर रस की सृष्टि नहीं होती। वीर रस 'त्याग' और 'उत्सर्ग' की ओर विशेष रूप से देखता है। दान, दया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म और कर्म आदि क्षेत्रों में भी त्याग और उत्सर्ग की भावना ही विशेष रूप से कार्य करती है। त्याग और उत्सर्ग उन भावों का प्रेरक है, जिनसे वीर रस की सृष्टि होती है। वीर रस का स्थायी भाव, उत्साह है। संचारीभाव गर्व, धृति, स्मृति, दया, हर्ष, मति, असूया और आवेग इत्यादि हैं। इसका आलंबन शत्रु, दीन, याचक, तीर्थ और पर्व आदि हैं। इसी प्रकार शत्रु, का पराक्रम और याचक की दीन दशा इसके उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच, गर्वयुक्त वचन, आदर और दयामय वचन इसके अनुभाव हैं। आचार्यों ने वीर रस को युद्धवीर, दयावीर, धर्मवीर तथा दानवीर इन चार भेदों में विभक्त किया है। अत्यधिक वीरता प्रदर्शित करने वाले को युद्धवीर कहते हैं। इसका आलंबन शत्रु और उद्दीपन शत्रु के कार्य हैं। वीर की गर्वोक्ति और युद्ध कौशल इसके अनुभाव तथा हर्ष, आवेग, औत्सुक्य इत्यादि इसके संचारी हैं। दानवीर वह है, जो दान के क्षेत्र में वीरता प्रदर्शित करता है। इसका आलंबन याचक, उद्दीपन दाताओं का दान, पात्र प्रशंसा इत्यादि हैं। याचक का आदर-सत्कार इसके अनुभाव, हर्ष और गर्व इसके संचारी हैं। धर्मवीर अत्यन्त धर्मनिष्ठ को कहते हैं। धर्म-ग्रन्थों के वचन इसके आलंबन और धर्म-फल, प्रशंसा आदि उद्दीपन है। धर्माचरण अनुभाव, धृति, विबोध तथा मति, संचारी भाव हैं। अत्यधिक दयालु को दयावीर कहते हैं। दया के पात्र व्यक्ति इसके आलम्बन हैं, दीन दशा उद्दीपन, सान्त्वना-पूर्ण वचन अनुभाव और धृति, हर्ष, मति आदि संचारीभाव हैं।

'रत्नाकर' जी ने वीर रस को केवल परिस्थितियों के चित्रण से प्रस्तुत किया है। रीतिकाल के कुछ कवियों ने वीर रस की व्यंजना के लिए आलम्बन को मुख्यता दी है, जिससे उनका वीर रस संकुचित हो गया है। रत्नाकर का वीर रस इस दोष से मुक्त है। वह अधिक व्यापक और विशद है। उसके प्रभाव में उग्रता है। उसमें ऐसी सजीवता है, जो निर्जीव को भी सजीव बनाने वाली है। कुछ संकेतों द्वारा ही ऐसे चित्र उपस्थित किये गये हैं, जो हृदय को आन्दोलित कर देते हैं। प्रथम तो उन्होंने कार्यों और परिस्थितियों से ही रसों की व्यंजना की है दूसरे प्रायः सात्विकों और अनुभावों को ही उन्होंने विशेष स्थान दिया है।

गंगावतरण के प्रथम-सर्ग में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा खो जाने से सबका मुंह लटक जाता है। ज्योंही महाराज सगर को यह वृत्तान्त ज्ञात होता है, उनकी भौंहे टेढ़ी हो जाती है, भुजाएँ फड़क उठती हैं। यहाँ आलम्बन के अभाव में भी केवल परिस्थिति के चित्रण द्वारा कायिक और वाचिक अनुभावों द्वारा वीर और रौद्र का समन्वित रूप कितना स्वाभाविक है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनि अति अनहित बैन भए नृप-नैन रिसौंहैं।
फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौंहैं ॥

कह्यौ सारथी टेरि त्रिपथगामी रथ नाधौं।
महाचाप सायक अमोघ भाथनि भरि बाधौं ॥ १।३२

निम्नांकित छन्द में वाचिक अनुभावों द्वारा रौद्र और वीर का मिश्रित चित्र देखिये, जिसमें महाराज सम्पूर्ण सेनापतियों को उत्तेजित कर रहे हैं। आलंबन के अभाव में भी क्रोध का स्थायीभाव अपने पूर्ण प्रभाव में है—

सेनप होहिं सनद्ध सकल-जग जीतन हारे
हम चलि देखैं आप कौन को प्रान न प्यारे

काको सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है
को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है। १।३३

अनुभावों के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ ही कवि ने बहुत सो बातें चित्रों द्वारा व्यंजित की है। सगर के साठ हजार पुत्र अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को खोजने के लिए पिता की आज्ञा से प्रेरित होकर भुजदंडों को गर्व से फड़काने लगे, मूँछों पर ताव देकर भयंकर सिंहनाद करते हुए वे, नेत्रों को लाल किए हुए आगे बढ़ने लगे—

पितु आयसु सुनि सकल सुमति-नंदन मन भाषे।
तमकि तोलि भुजदंड चंड विक्रम अभिलाषे ॥

चले नाइ पद माथ हाथ मोछनि पर फेरत।
सिंहनाद विकराल लाल लोचन करि हेरत ॥ २।१२

युद्धवीर का एक चित्र देखिये, जिसमें औत्सुक्य संचारी की बड़ी ही स्वाभाविक अभिव्यंजना हुई है। महाराज सगर को यह ज्ञातनहीं है कि घोड़ा किसने लिया है ऐसी परीस्थिति में उन्हें यह उत्कंठा है कि घोड़ा कहाँ गया? मन में उत्साह और क्रोध दोनों है कि यदि वह मिल जायतो उसके सामने पूर्ण पराक्रम का परिचय दूँ। इस कसमसाहट की स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्र कवि ने उपस्थित किया है—

कढ़ी परति करवाल कोश सौं चमकि चमकि कै।
निकसे आवत बान तून सौं तमकि तमकि कै ॥

उठि उठि कर रहि जात कसकि तिनके वाहन कौं।
पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उतसाहन कौं ॥२।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगर सुतों को तारने के लिए सूर्यवंशी भगीरथ ने ऐसा कठोर तप किया कि अनेक वर्ष बीत गये किन्तु वे अपने प्रतिज्ञा पर अटल रहे, प्रकृति देवी के सम्पूर्ण प्रहारों को सहते रहे, उनके तपस्या के तेज से सारा भूमण्डल तपने लगा। इस प्रसंग में धर्मवीर का अच्छा उदाहरण है—

बीते बरस अनेक टेक जब नैंकु न टारी।
सह्यो सीस धरि धीर बीर हिम आतप बारी॥
तब ताकैं तप-तेज तपन लाग्यौ महि मंडल।
उफनि उठ्यौ ब्रह्मांड भगरि भय भर्‌यौ अखंडल। ६।९

भगीरथ की तपस्या से चतुरानन ब्रह्मा व्याकुल होकर, भक्त की रक्षा के लिए दौड़ पड़े। इस प्रसंग में कवि ने दया वीर का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, उसमें अनुभाव-विधान और चित्रात्मकता दर्शनीय है—

लै सँग देव-समाज काज बिसराइ जगत कौ।
उठि आतुर अकुलाइ ल्याइ मन भाय भगत कौ॥
चले प्रसंसत हँसत हंस हाँकत चतुरानन।
पहुँचे आनि तुरंत तपत भूपति जेंहि कानन॥ ६।११

गंगागम के समय भगवान् शंकर की सन्नद्धता और दृढ़ता में उत्साह स्थायी भाव के साथ गर्व संचारी का सजीव चित्र देखिये—

जुगल कंध बल संध हुमकि हुमसाइ उचाये।
दोउ भुजदंड उदंड तोल ताने तमकाये॥

कर जमाइ करिहायें नैन नग ओर लगाये।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाये॥

इसी अवसर पर भगवान् शंकर के मन में दो भाव साथ-साथ जागृत हुए। उनमें से एक तो उत्साह का है और दूसरा क्रोध का। इस प्रकार उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में रौद्र और वीर का समन्वित रूप दिखाई देता है :—

बल बिक्रम पौरुष अपार दरसत अंग अंग तैं।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रंग रंग तें॥

मनहु भानु-सितभानु-किरन-बिरचित पट वर की।
झलक दुरंगी देति देह दुति सिव संकर की॥

वीर और रौद्र का यही समन्वित रूप सप्तम सर्ग के गंगावतरण-प्रसंग में दिखाई देता है। इसमें गर्व संचारी का कवि ने कुशल चित्र अंकित किया है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर संग मही मैं॥
लै सवेग विक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्मलोक कौं बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥

इस प्रकार गंगावतरण के अधिकांश स्थलों पर वीर और रौद्र रस का समन्वित रूप प्रस्तुत करके कवि ने अपनी विशिष्ट वर्णन-शैली का परिचय दिया है।

भगवान् शंकर का आशुतोष दयामय स्वरूप निम्नांकित छंद में एक ओर दयावीर का उदाहरण है दूसरी ओर वीर रूप से भावोद्रेक में सहायक है। यहाँ कवि ने सन्नद्धता का एक रूप सा खड़ा कर दिया है। सन्नद्धता के जो भी रूप हो सकते हैं कवि को उन सबका ध्यान है। यहाँ केवल संकेतों और मुद्राओं से सन्नद्धता का स्वरूप अंकित किया गया है। इसमें प्रत्येक शब्द रूप-निर्मिति में सहायक है जो मर्यादा और संयम की रस्सी से बँधा हुआ है :—

हेम-वरन सिर जटा चंद-छवि छटा भाल पर।
कलित कृपा की कटा-घटा लोचन विसाल पर॥
फनि-पति-हार-विहार-भूमि वच्छस्थल राजै।
जग-अवलंब प्रलंब भुजनि फरकति छवि छाजै॥६।३३

भयानक रस

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। भय के दो रूप हैं—प्रथम में प्रियजनों पर विपत्ति की आशंका से और द्वितीय में प्रियजनों पर विपत्ति पड़ने से। द्वितीय करुण-रस के अन्तर्गत है और प्रथम वस्तुतः भय का रूप है इसमें प्रिय जनों के साथ ही स्वयं किसी व्यक्ति विशेष पर विपत्ति की आशंका से भी भयोत्पत्ति हो सकती है। इसका आलम्बन व्याघ्र, सर्प अथवा भयोत्पादक दृश्य हैं, उनकी भयपूर्ण चेष्टायें, निर्जनता, आश्चर्ययुक्त स्वर आदि उद्दीपन हैं। रोमांच, स्वेद, कंप, चिल्लाना, रोना आदि इसके अनुभाव और शङ्का, ग्लानि, आवेग, मूर्च्छा, त्रास, जुगुप्सा, दैन्य आदि संचारी भाव हैं।

रत्नाकर जी ने भयानक रस की अवतारणा में बड़ी निपुणता दिखलाई है। कवि ने भीत व्यक्तियों की मुद्राओं का सूक्ष्म निरीक्षण कर भाव-चित्र प्रस्तुत किए हैं। यह निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म तथा स्वाभाविक हुआ है। गंगा आकाश मंडल को चीरती हुई पृथ्वी तल की ओर बड़े तीव्र वेग से गिर रही हैं। इस वेग से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाश में खलबली मच गई है। यहाँ कवि ने मुद्राओं द्वारा भयानक-रस का चित्र बड़ी सूक्ष्म तूलिका से अंकित किया है :—

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके वाहन रुकत नैंकु नहिं विधि हरि हर के॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरकें।
धुनि प्रति धुनि सौ धमकि धराधर के उर धरके॥

पृथ्वी के सम्पूर्ण विशाल पर्वत कंपित हो उठे, समुद्र में उत्ताल तरंगें उठने लगीं। प्रकृति के इस उग्र रूप द्वारा, कवि ने भयानक-रस प्रस्तुत किया है :—

विंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु-मंदर-हिय हहरे।
ठहरे जदपि पषान ठमकि तउ ठामहिं ठहरे॥
थहरे गहरे सिंधु पर्व विनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर समूह नैंकु इत उत नहिं ढहरे।।७।७

कवि ने कई स्थानों पर उत्साह और भय की मैत्रीपूर्ण योजना की है। सगर-सुत अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को खोजने के लिए उत्साह-वश पाताल खोदने लगते हैं, जिससे नाग और असुर आदि भय-वश भाग जाते हैं :—

पितु-प्रेरित पुनि चले विपुल-बल-बिक्रम धारी।
साठ सहस बरिबंड वीर सुर-नर-भयकारी॥
खोदि पताल उताल खोरि सब खोजन लागे।
मच्यौ महा उत्पात नाग असुरादिक भागे।।२।२५

क्रोध के साथ भय का समन्वित रूप द्वितीय सर्ग में वर्णित है, जिसमें सगर-सुत क्रोध से जिस भी व्यक्ति को देखते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि घोड़ा उसी ने चुराया है, जिससे व्यक्ति डर जाते हैं। इस प्रकार सारे पृथ्वी के प्राणी भय से आतंकित हो जाते हैं :—

इहै कियौ मख भङ्ग इहै हरि लियौ तुरंगम।
यौं कहि हिंसत सबहिं लहहिं जासौं जहँ संगम॥
साठ सहस महिपाल-पूत महि-मर्म विदारत।
त्राहि त्राहि भगवंत भए प्रानी सब आरत।।२।१९

भय के संचारी रूप में कहीं कहीं वर्णन किया गया है। सगर के पुत्र घोड़े को खोजने के लिए योजन योजन भर पृथ्वी खोदे डाल रहे हैं, उनके प्रबल प्रहार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से पवन, समुद्र, पर्वत सभी थर्रा उठे हैं। पर्वतों के पत्थरों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं। इस प्रकार यहाँ सगर-सुतों के उत्साह के साथ पृथ्वी की प्रलय-कारी स्थिति के वर्णन में भय संचारी रूप में उपस्थित किया गया है :—

प्रवल प्रहारनि पौन चपल वाजी लौं चमकत।
हलचल होत समुद्र भद्र-अद्री-उर धमकत॥
उड़त फुलिंग असेस सेस मानौ फुफुकारत।
सुरपति हूँ पछतात प्रलय-आगम निरधारत॥२।१४

कहीं कहीं भयानक रस का वर्णन आलंकारिक शैली में किया गया है। निम्नांकित छन्द में कवि ने गंगागम का सौन्दर्य वर्णन उत्प्रेक्षालंकार के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिसमें स्थायी भाव भय आलंकारिक रूप में आने से दव गया है :—

कहूँ पौन-नट निपुन गौन को वेग उघारत।
जल कंदुक के बूँद पारि पुनि गहत उछारत॥
मनौ हंस-गन मगन सरद बादर पर खेलत।
भरत भाँवरें जुरत मुरत उलहत अवहेलत॥७।३०

अद्‌भुत रस

अद्भुत रस की सृष्टि का आधार चमत्कार है। आचार्यों के मतानुसार विचित्र वस्तुओं के देखने या सुनने से जव आश्चर्य की भावना पुष्ट होती है तब अद्भुत रस उत्पन्न होता है। अद्भुत या अलौकिक वस्तुएँ या घटनाएँ इसका आलंवन हैं। इन अद्भुत घटनाओं की विलक्षणता ही इसका उद्दीपन है। आँखें फाड़कर देखना, रोमांच, स्वेद, स्तम्भ, स्वरभंग आदि अनुभाव और जड़ता, दैन्य, आवेग, शंका, चिंता इत्यादि संचारीभाव हैं। आश्चर्य इस रस का स्थायी-भाव है।

रत्नाकर ने अद्‌भुत रस की प्रकृति के अनुसार साधनों को एकत्र किया है। रस की अवतारणा करने वाले उनके साधन अधिक सुदृढ़ और प्रभावपूर्ण हैं। गंगावतरण के छठें सर्ग में भगीरथ की तपस्या का वर्णन है। भगवान शंकर उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं। भगीरथ तो तपस्या में अपने आप को भूले हुए बैठे हैं, तब भगवान् शंकर सृंगी वजाते हैं। इसके नाद को सुनकर भगीरथ जव नेत्र खोलते हैं तो चकित हो जाते हैं, वे उस सुन्दर रूप को देखकर स्तम्भित हो जाते हैं और अपलक नेत्रों से उन्हें निरखने लगते हैं—इसमें कवि ने अनुभावों द्वारा आश्चर्य चकित भगीरथ का जो चित्र अंकित किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृग उघारि त्रिपुरारि निरखि नृप नयन चलाए ।
रहे ललकि छवि छकित पलक बिन पलक गिराए ।।
सुन्दर अमल अनूप-भव्य भव रूप सुहायौ ।
मनु तप-तेज-स्वरूप भूप आगै चलि आयौ ।। ६।३१

गंगागम के समय गुफाओं में रहने वाले तपस्वियों की हड़वड़ाहट का यह चित्र प्रस्तुत है, जिसमें कवि ने अनुभावों के माध्यम से आश्चर्य स्थायीभाव और भय संचारी का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र अंकित किया है :—

सकल सुरासुर सिद्ध नाग गुह्यक गिरि वासी ।
इत उत हेरत हरबरात हिय भरे उदासी ।।
छाड़ि जोग जप जज्ञ अज्ञ लौं चौंकि चकाए ।
जँह तँह दौरत दुरत जुरत कर कान लगाए ।। ८।३०

शान्त रस

गंगावतरण का अंगीरस शान्त रस है । इस रस की स्थिति में चित्त की सम्पूर्ण द्विविधाओं का अन्त हो जाता है । इसका स्थायी भाव निर्वेद है, जो तत्व-ज्ञान से उत्पन्न होता है । इस प्रकार तत्व-ज्ञान द्वारा ज्ञान-प्रतीति की स्थिति में निर्वेद उत्पन्न होता है । संसार की असारता इसका आलंबन, सज्जनों का साथ तथा तीर्थाटन इत्यादि इसके उद्दीपन हैं । संसार के झंझटों से व्याकुल होकर संसार-त्याग की तत्परता ही अनुभाव हैं । धृति, मति, हर्ष, ग्लानि और दैन्य इत्यादि इसके संचारी हैं ।

गङ्गावतरण का अधिकांश प्रसंग शान्त रस के अन्तर्गत है जिसमें कवि ने बड़ी स्वाभाविक तूलिका से शान्त-रस के चित्र अंकित किए हैं। चतुर्थ अङ्क में राधा-कृष्ण-लीला प्रसंग में शान्त रस के स्मरणीय दृश्यों का अंकन किया गया है । रत्नाकर जी एक भक्त कवि हैं । इनके काव्य में भक्ति भावना से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंगों को शान्त-रस के अन्तर्गत लिया जा सकता है । निम्नांकित छन्द में कवि ने भगीरथ की तपस्या का जो चित्र अंकित किया है, उसमें धृति संचारी की बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है :—

कंद मूल तिन करि अहार कछु वार विताए ।
कछुक दिवस तृन पात परे पुहुमी चुनि खाए ।।
कुछ दिन वारि बयारि पान करि कछु दिन टेरे ।
इहि विधि कष्ट उठाइ किए व्रत घोर घनेरे ।।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्भावना शक्ति

उद्भावना शक्ति का अभिप्राय किसी कवि द्वारा वर्णित उन प्रसंगों से है जिनका कोई ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आधार नहीं होता बल्कि जो केवल कवि कल्पना से उद्भूत होकर कथा की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक होते हैं। इन उद्भावनाओं से विषय को अधिक रोचक, मर्यादित और समसामयिक बनाने का प्रयत्न भी किया जाता है। उद्भावनाओं का आधार कवि का प्रातिभ-ज्ञान है। यह सारस्वत प्रतिभा जिसमें जितनी अधिक विकसित होती है वह उतने ही अधिक प्रसंगों की सफल उद्भावना करके वर्ण्य विषय को आकर्षक बना देता है। कवि की कृति तो जल में फैली हुई तेल की एक बूंद का विस्तार है जिसमें कवि ही सब कुछ है। अपनी मौलिक कल्पनाओं के आधार पर वह विषय को जैसी मङ्गलमयी और आनन्दमयी भूमि प्रदान कर सके, उसकी कला उतनी ही अधिक श्रेष्ठ कही जा सकती है।

इस दृष्टिकोण से यदि हम रत्नाकर के गङ्गावतरण का मूल्यांकन करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि यद्यपि कवि ने कथा का मूलाधार वाल्मीकि रामायण से ग्रहण किया है किन्तु वाल्मीकि रामायण में जो बातें सूत्ररूप में प्रस्तुत की गई हैं वे सभी गङ्गावतरण में अत्यधिक विस्तार से अंकित की गई हैं तथा कवि की सूक्ष्म दृष्टि और सूझ की परिचायिका हैं।

सर्वप्रथम यदि हम गङ्गावतरण के वस्तु शिल्प को ही लें तो हमें यह ज्ञात होगा कि वाल्मीकि रामायण की संक्षिप्त कथा को एक खण्ड काव्य का रूप देकर कवि ने अपनी कल्पनाप्रवणता और रस-सिद्धि का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ रामायण के इकतालीसवें तथा बयालीसवें सर्ग के १६ श्लोकों में वर्णित कथा का विस्तार कवि ने पंचम सर्ग के पूरे छन्दों में किया है। इसी प्रकार नवम से लेकर त्रयोदश सर्ग का आधार केवल एक श्लोक है :—

जगाम च पुनर्गङ्गा भगीरथरथानुगा।
सागरं चापि संप्राप्ता सा सरित्प्रवरा तदा॥

इतने थोड़े से संकेत का कवि ने पाँच सर्गों में विस्तार किया है। नवम से त्रयोदश सर्ग के वर्णन पर नीलकंठ कवि द्वारा संस्कृत में लिखे गंगावतरण काव्य का प्रभाव है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगावतरण के चतुर्थ सर्ग का आधार वाल्मीकि रामायण न होकर देवी भागवत् का नवमस्कंध है जिसमें एक स्थान पर श्रीनारायण से नारद पूछते हैं कि भगीरथ ने गङ्गा की किस प्रकार स्तुति की। उसी प्रसंग में निम्नांकित श्लोक मिलता है :—

कृष्णविग्रहसंभूता कृष्णतुल्यां परां सतीम्।
वह्नि शुद्धांशुकानां रत्नभूषणभूषिताम्॥

इसी प्रसंग में विष्णुपदी स्तोत्र है जो ब्रह्मवैवर्तपुराण और कृष्णजन्म खण्ड में तथा और भी अनेक पुराणों में पाया जाता है :—

शिव संगीत संमुग्ध श्रीकृष्णांग समुद्भवाम्।
राधांगद्रव संयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥

शिव के संगीत का उल्लेख भी कृष्णजन्म खण्ड में मिलता है और यह भी लिखा गया है कि शिव के संगीत से देवगण भी द्रवीभूत हो गये। उनके शरीर का जल भी गङ्गा जल में जा मिला :—

शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा।

इस प्रकार गङ्गा की उत्पत्ति की कथा का आधार यद्यपि वाल्मीकि रामायण, देवी भागवत् और ब्रह्मवैवर्तपुराण है किन्तु कवि ने पूर्ण कल्पना-चातुरी से इन कथाओं की लघु तैल बिन्दुओं को अपने काव्य प्रतिभा रूपी जल में प्रसरित होने का अवसर दिया है। कवि गोलोक में श्रीकृष्ण राधा की प्रेमलीला का जो चित्र अंकित करता है वह उसके भक्त हृदय की झलक तो देता ही है, कल्पना वैशिष्ट्य का भी परिचायक है। पहले वह एक मधुर वातावरण का सृजन करता हुआ वनों से सुशोभित वृन्दावन, गोवर्धन पर्वत की शोभा का अंकन, दिव्य वृक्षों की शोभा, लताओं और वृक्षों का सन्मिलन, कृष्णा नदी की श्यामलता, नाना प्रकार के कमलों का उन्मीलन, वासन्ती समीर, भ्रमरों का गुंजार आदि का रमणीय चित्र अंकित करता है :—

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
कूजत विविध विहंग मधुप गूंजत मनभावत॥
वह सुगन्ध वह रंग ढंग की लखि टटकाई।
लगति चित्र सी नन्दनादि वन की चटकाई॥४।१२

इस प्राकृतिक शोभा के साथ कवि वृन्दावन की गौओं और गोप युवतियों की प्रेम-मग्नता का वर्णन करता है तथा पुनः अक्षयवट का वर्णन तथा चन्द्रमा की कान्ति के समान चँदोवे की साज सज्जा का वर्णन करता है। पुनः सहस्रदल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमल के ऊपर स्थित षोडश-दल कमल और उसके ऊपर स्थित अष्टदल कमल की शोभा का चित्र अंकित करता है जिसमें रंगविरंगे रत्नों के सिंहासन पर स्थित श्रीकृष्ण राधिका की प्रेममयी मूर्त्ति का सजीव चित्र उपस्थित करता है :—

तापर लखे विराजमान वर जुगल-बिहारी।
गौर - स्याम-दोउ-तेज-तत्त्व - मृदु-मूरति-धारी ॥
धनीभूत सुभ सुद्ध सच्चिदानन्द अखंडित।
ब्रह्म अनादि सु आदि सक्ति-जुत गुन-गन मंडित ॥

× × ×

नील पीत अभिराम बसन द्युति-धाम धराये।
मनहु एक को रंग एक निज अंग अँगाए ॥
निज-निज-रुचि-अनुहार धरे दोउ दिव्य विभूपन।
जो तन-द्युति की दमक पाइ चमकत ज्यौं पूपन ॥

इस रमणीय शोभा के दर्शन से सम्पूर्ण देवगण आनन्द-निमग्न हो गये। भगवती शारदा ने प्रेम के रोमांच से रोमांचित होकर वीणा हाथ में उठा ली और मधुर स्वर से गान आरम्भ किया। पुनः भगवान् शंकर के भक्ति-जन्य असीम आनन्द का चित्र देखिये :—

सिव सुजान तव उमगि डमकि डमरू सुख-पागे।
रचि तांडव रस,घूमि जुगल-गुन गावन लागे ॥
भर्‌यो भूरि आनन्द हृदय तिहिं लगे उलीचन।
पौन-पटल पर भव्य भाव अंतर के खींचन ॥ ४।३१

यह सम्पूर्ण प्रसंग अत्यन्त सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है जो कवि की कल्पना-प्रवणता और उद्भावना शक्ति का परिचायक है।

इसी प्रकार सप्तम और अष्टम सर्ग में कवि ने गङ्गागम का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह भी उसकी दूरदर्शिनी कल्पना का परिचायक है जिसमें आधार कम से कम और अनेक नवीन दृश्यों की कल्पनाएँ अधिक हैं। प्रारम्भ में गङ्गागम के समय सम्पूर्ण लोकों के कम्पन का वर्णन किया गया है। कहीं दिक्पालों की भयभीत मुद्रा, कहीं देवलोक की हलचल, कहीं दिग्गजों का दांतों में दिशाओं को दवाकर भयभीत होकर आँखों का चंचल करना, कहीं गगन-मण्डल की घरघराहट और कहीं पर्वतों की हरहराहट से सारा वातावरण आतंक और भय से भरा हुआ दिखाया गया है और इस प्रकार के वातावरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को प्रस्तुत करने में कवि की कला अपने श्रेष्ठ स्वरूप में अवतीर्ण हुई है। शिव की सन्नद्ध मुद्रा का एक चित्र देखिये :—

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ।
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ॥
व्याल-माल सौ भाल बाल चंदहि दृढ़ कीन्यौ।
जटा-जाल कौ झाल-व्यूह गह्वर करि लीन्यौ॥ ७।११

इसी प्रकार अष्टम सर्ग से द्वादश सर्ग तक गङ्गा के अवतरण-पथ का जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है, वह कवि-कल्पना प्रसूत अधिक और आधार-ग्रहण की दृष्टि से अत्यधिक न्यून है। इसमें सन्देह नहीं कि कवि ने इस वर्णन में भी नीलकंठ कवि के गङ्गा वर्णन से प्रेरणा ग्रहण की है किन्तु फिर भी अनेक दृश्यों की योजना कवि ने स्वयं की है। शिव जी की जटा से निकलती हुई गङ्गा का वर्णन देखिए :—

यह कहि कर गहि जटा-सटा लौं सूंति सटाई।
बिंदु सरोवर ओर छोर ताकी लटकाई॥
तातैं निकसि अपार धार परिपूरि सरोवर।
चली उबरि ढरि करि उदोत पट् सोत धरा पर॥ ८।१२

नवम-सर्ग से लेकर द्वादश सर्ग तक नागरिकों के स्नान, विनोद और क्रीड़ा का जो वर्णन किया गया है वह भी अत्यन्त सजीव है। गंगा की तीव्र धार ने मानों सबको मुग्ध कर लिया है। इसके अधिकांश दृश्य को वाराणसी के घाटों पर आज भी देखा जा सकता है किन्तु निरीक्षण-शक्ति की सूक्ष्मता दर्शनीय है :—

कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल अंतर धावत।
रबिहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर हर-धुनि लावत॥
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत विलोकत।
कोउ परिहास-बिलास-हेत ताको गहि रोकत॥ ९।१५

इस प्रकार के अनेक दृश्यों की योजना कवि की इस भाव-चित्रशाला के अनुपम सजीव चित्र हैं जिसमें कवि की सूक्ष्म-दर्शिनी प्रतिभा का विलास सहज ही देखा जा सकता है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकृति-वर्णन

गंगावतरण प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की एक साकार चेतना है जो भारत के गौरवशाली पर्वतराज हिमांचल के अन्तर से गिरती हुई देव-नदी गंगा के उद्‌गम की रमणीय-कथा को सांस्कृतिक भावनाओं में समेटे हुए है। इस काव्य में गंगा के उद्‌गम की कथा को जो रमणीयता प्राप्त हुई है उसका मुख्य कारण कवि द्वारा वर्णित प्रकृति की सूक्ष्म चित्रावली ही है।

प्रकृति और मनुष्य का अनादि-काल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आज की आडम्बरपूर्ण सभ्यता से जब मनुष्य कोसों दूर था और प्रकृति के सुरम्य क्रोड़ में एकाकी जीवन-यापन करता था तब प्रकृति ही उसकी सर्वस्व थी। वह रात दिन प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में विचरण करता था और इससे ही अपने सुख दुःख की कहानी कहता था। सभ्यता के अतिशय से मनुष्य का प्रकृति से साथ सम्बन्ध शिथिल होता गया और वह प्रकृति के मनोरम क्रोड़ को छोड़ कर विशाल अट्टालिकाओं में प्रकृति से दूर होकर निवास करने लगा। किन्तु प्रकृति मानव की चिर सहचरी होने के कारण अब भी मनुष्य को अपने सौंदर्य और प्रेम से झकझोर देती है, उसकी भावनाओं को उद्‌बुद्ध कर, कल्पनाओं और प्रेरणाओं में रंग भरकर उसे अपनी ओर खींच लेती है। यही कारण है कि कविता के जन्म से लेकर आज तक काव्य और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध बना हुआ है और मनुष्य इस सम्बन्ध द्वारा अपने आप को अभिव्यक्त करता रहा है।

जहाँ तक गंगावतरण के कवि का सम्बन्ध है यहाँ प्रकृति चित्रण के कई रूपों का दृश्य कवि ने प्रस्तुत किया है और ये सभी चित्रण कवि के द्वारा इतनी स्वाभाविक पृष्ठ भूमि पर अंकित किए गए हैं कि हमें किसी क्षण प्रकृति का सजीव रूप विस्मृत नहीं हो पाता और एक प्रवाह में पाठक का हृदय बहता हुआ सा प्रतीत होता है। यह प्रवाह भी गंगा के प्रवाह के समान पाठकों को बहा ले जाता है—जैसे भगीरथ रथ पर चढ़े हुए गंगा के प्रवाह के साथ साथ चलते हैं वैसे ही पाठक भी। यदि रत्नाकर के प्रकृति-चित्रण के रूपों पर विचार करें तो उन्हें निम्नांकित रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

१—आलम्बन रूप

२—उद्दीपन रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३—सुकुमार रूप

४—उग्र रूप

५—चित्रात्मक विधान रूप

६—मानवीकरण

७—दार्शनिक तथ्य निरूपण

८—आलंकारिक रूप

आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण

जहाँ प्रकृति का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म रूप में केवल प्रकृति के लिए ही होता है, उसमें किसी प्रकार की मानवीय भावना का आरोपण नहीं किया जाता वहाँ कवि आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्र अंकित करता है। इस वर्णन में प्रकृति का ज्यों का त्यों वर्णन अथवा कोरा प्रकृति-चित्रण प्रधान होता है। इस दृष्टि से गंगावतरण का अधिकांश वर्णन आलम्बन-रूप में उपलब्ध होता है। रीतिकाल में प्रकृति का अधिकांश वर्णन उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया गया है किन्तु रत्नाकर ने रीति और आधुनिक युग की चेतना के सन्धि-स्थल पर खड़े होकर भी इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य की प्राचीन परम्परा का अनुगमन भी किया है। आलंबन रूप में प्रकृति-चित्रण कवि-कला की प्रमुख विशेषता है। सप्तम और अष्टम सर्ग में तो प्रकृति के आलम्बन रूप के अनेक चित्र मिलते हैं।

सप्तम सर्ग में गंगा आकाश मार्ग से उतर रही हैं, उनमें इतना वेग है कि पवन-पटल छिन्न-भिन्न हो जाता है, बादलों के टुकड़े बिखर जाते हैं और वह धारा दिशाओं में कावा काटती हुई पृथ्वी की ओर चली आ रही है :—

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति॥
चली धार धुधकारि धरा दिसि काटति कावा।
सगर सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा॥

कवि ने गङ्गा की गिरती हुई धारा का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। कभी वह आकाश मार्ग का और कभी पृथ्वी के पर्वतीय-पथ के स्वाभाविक वर्णन का चित्र अंकित करता है जिसे पढ़कर पाठक का मन भी हिमाचल के पर्वतीय प्रदेश की शोभा में विस्मृत होने के साथ-साथ गङ्गा की लहरों में खो जाता है। इन सम्पूर्ण वर्णनों में कवि ने अनुभावों द्वारा जो विलक्षण अभिव्यंजना की है वह चित्र को और भी अधिक सजीव बना देता है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इमि हिम-खंड विहाइ आइ पाहन पथ मंडति ।
ढरकि ढार इक डार चली गिरि-खंडनि खंडति ॥
फाँदति फैलति फटति सटति सिमिटति सुढंग सौं ।
सृङ्गनि विच विच वढ़ी गंग सरि भरि उमंग सौं ॥ ८।३४

उपर्युक्त छन्द में कवि ने पर्वतीय मार्ग में तीव्र वेग से प्रवाहिता गङ्गा का चित्रांकन किया है, जिसमें पर्वत खण्डों को तोड़ती हुई गङ्गा की धार कहीं ऊपर से गिर रही है, कहीं पृथ्वी पर फैल जाती है, कहीं सिमट कर चलती है और कहीं पर्वत श्रेणियों के बीच-बीच उमङ्ग भर कर चलती है ।

उद्दीपन रूप

जहाँ भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति का चित्रण किया जाता है वहाँ उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण की प्रधानता रहती है । गङ्गावतरण के नवम सर्ग से लेकर द्वादश सर्ग तक का अधिकांश वर्णन उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया गया है । चतुर्थ सर्ग में वृन्दावन की शोभा का वर्णन भी इसके अन्तर्गत है । नवम सर्ग में गंगा की धारा में स्नान करने वाले नागरिकों एवं नवयुवतियों का जो चित्रांकन किया गया है उनमें से अधिकांश में प्रकृति भावनाओं के उद्दीपन में सहायक हुए हैं । गंगा की तीव्र धारा जब समतल भूमि पर उतरती है तो मनोविनोद की सामग्री मानो स्वतः तैयार हो जाती है । कोई बढ़ती हुई धारा पर पैर रख कर खड़े होकर वेग के तीव्रता की प्रतीक्षा कर रहा है, कोई आचमन कर रहा है, कोई जल-क्रीड़ा का आनन्द ले रहा है :—

जँह कोउ मंजुल मोड़ तोड़-गति तरल निवारत ।
प्रवल-वेग जल फैलि सांति-सुखमा विस्तारत ॥
तहाँ जूह के जूह जुरत जल-केलि उमाहे ।
वहु विनोद आमोद करत आनँद अवगाहे ॥ ९।१४

चतुर्थ सर्ग में कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में वृन्दावन की अनुपम शोभा का वर्णन करता हुआ कवि उस रमणीय शोभा-दर्शन से उत्पन्न गोपिकाओं, गोवत्सों और सुन्दर श्रृङ्गार युक्त गायों के आनन्द का वर्णन करता है :—

जित तित सुरभि सवत्स चरति विचरति सुखसानी ।
बिविध-बरनि मनहरनि तरुनि सुभ-गुन-सरसानी ॥
हेम-कलित सुठि सृङ्ग पुच्छ-मंडित मुकताली ।
पग नूपुर-झनकार झूल की झलक निराली ॥ ४।१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुकुमार रूप

रत्नाकर जी ने प्रकृति के मधुर और सुकुमार स्वरूप का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। प्रकृति के इन सम्पूर्ण स्वरूपों को कवि ने अत्यन्त निकट से देखा है अन्यथा वर्णन की वह सजीवता, जो इनके काव्य में विराजमान है, नहीं आ सकती थी। प्रकृति के कोमल स्वरूप का अंकन आलम्बन रूप में विशिष्ट महत्व रखता है, कवि ने आलम्बन रूप में प्रकृति के जो चित्र अंकित किए हैं उनमें कोमल और उग्र, इन दोनों रूपों में चित्रण मिलता है। सुकुमार भावनाओं की योजना बड़ी मधुर शब्दावली द्वारा संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करती है। इस प्रकार के वर्णन चतुर्थ, सप्तम और अष्टम सर्ग में विशेष रूप से प्रस्तुत किए गये हैं। चतुर्थ सर्ग में वृन्दावन की दिव्य शोभा का एक दृश्य है जिसमें मन्दगति से वहने वाला पवन चारो ओर पुष्पों की सुगन्ध विखेर रहा है, पक्षियों का कलरव, भ्रमरों का गुंजन और सारा शृङ्गार इतना आकर्षक है कि उसके सामने नन्दन-कानन की शोभा भी फीकी पड़ गई :—

सीतल सुखद समीर धीर परिमल वगरावत।
कूजत विविध विहंग मधुप गूँजत मनभावत॥
वह सुगन्ध वह रंग ढंग को लखि हटकाई।
लगति चित्र सी बन्दनादि वन की चटकाई॥

अष्टम सर्ग में गंगोत्तरी से घाटी में उतरती हुई गंगा का वर्णन है, इस वहती हुई धारा पर जब चन्द्रमा की किरणें पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वत से चन्द्रमा की किरणें वही आ रही हों। कवि ने श्वेतता के चंचल रूप का जो सजीव वर्णन किया है वह उसके सूक्ष्म निरीक्षण का ही परिणाम है :—

गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई।
गिरि-सिर ते चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई॥
बक समूह इक संग गोति गिरि-तुंग सिखर तैं।
गये फैलि दुहुँ-वाहु बीच कै फावि फहर तैं॥८।३६

यहाँ कवि ने गंगा के उस दुर्द्धर्ष रूप का वर्णन नहीं किया है जो पर्वतों के हृदय को भी विदारित करने वाली है। उसकी गङ्गा-प्रवाह का सुकुमार-रूप जो नेत्रों को आनन्द देने वाला है, उस कमनीयता का दिग्दर्शन कराना कवि का मुख्य अभीष्ट है। अष्टम सर्ग के उत्तरार्द्ध के अधिकांश वर्णनों में कवि ने इसी मधुर-रूप का रमणीय चित्रांकन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उग्र-रूप

जहाँ कवि प्राकृतिक शक्तियों का भयंकर रूप चित्रित करता है वहाँ प्रकृति के उग्र रूप का वर्णन प्रधान होता है। कवि ने गङ्गावतरण के समय प्रकृति का जो उग्र रूप अंकित किया है वह सहृदय हृदय में कम्पन उत्पन्न करने वाला है। इस भयंकर और उद्धत रूप को देखकर आकाश-पाताल और मृत्युलोक के सम्पूर्ण चराचर जीव व्याकुल हो गए हैं। गङ्गा के धार की धमक से तीनों लोकों में आतंक छा जाता है, देव और असुरगण व्याकुल होकर इधर-उधर देखने लगते हैं, गगन-मंडल में सूर्य का रथ रुक जाता है और धरती के पर्वतराज कम्पित हो उठते हैं, समुद्र विना पूर्णिमा के ही लहराने लगता है :—

नभ-मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब मौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहैं कमलासन॥
विंध्य–हिमाचल–मलय–मेरु–मंदर- हिय–हहरे।
ढहरे जदपि पषान ठमकि तउ ठामहिं ठहरे॥
थहरे-गहरे सिंधु पर्व बिनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर-समूह नैंकु इत उत नहिं ढहरे॥७।६–७

पुनः शिव की जटा से तीव्र-वेग युक्त गङ्गा प्रवाह को देखकर पृथ्वी तल के सम्पूर्ण पशु-पक्षी गण व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगते हैं। हरिण अपनी चौकड़ी भूल जाते हैं, सींग वाले पशु भागते समय झाड़ियों में उलझ जाते हैं और पक्षिगण भय से व्याकुल होकर आकाश में उड़ जाते हैं :—

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराये।
तरफरात बहुसृंग सृंग झाड़िनि अरुझाए॥
गहत लवंग उतंग सृंग कूदत किलकारत।
उड़ि बिहंग बहु-रंङ्ग भयाकुल गगन गुहारत॥८।३२

इसके पूर्व द्वितीय सर्ग में सगर-सुतों द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्वान्वेषण के अवसर पर भी पृथ्वी के खोदने का जो वर्णन किया है, उसमें भी प्रकृति का यही भयंकर रूप दिखाई देता है। वे पृथ्वी पर ऐसा प्रहार करते हैं कि पवन और पर्वत भी कम्पित हो उठते हैं, अग्नि के ऐसे भयंकर स्फुलिंग उड़ते हैं मानों शेष-नाग ही फुफकार उठा हो। इस घटना से देवराज इन्द्र भी भयभीत हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबल प्रहारनि पौन चपल· वाजी लौं चमकत ।
हलचल होत समुद्र भद्र-अद्री-उर धमकत ।।
उड़त फुलिंग असेस सेस मानौ फुफकारत ।
सुरपतिहूँ पछतात प्रलय-आगम निरधारत ।। २।१४

चित्रात्मक विधान-रूप

कवि अपने काव्य में बाह्य जगत के अलौकिक ओर लौकिक दृश्यों द्वारा भावों और अनुभूतियों का एक चित्र अंकित करता है । इस प्रकार का चित्रांकन करते समय एक ओर उसकी दृष्टि पाठक के चित्त पर केन्द्रित रहती है और दूसरी ओर उसकी पूर्ण और दृढ़ आकांक्षा रहती है कि वह जिस भाव का चित्र अंकित कर रहा है उसका ज्यों का त्यों विकास पाठक के हृदय पर हो। वह अपने रसोद्रेक से पाठक को भी अभिभूत करना चाहता है । इसके लिए वह अनेक युक्तियों का आश्रय ग्रहण करता है । ये युक्तियाँ भिन्न-भिन्न कवियों की प्रतिभा के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं । रत्नाकर ने प्रकृति के माध्यम से भावों को मूर्त्त रूप प्रदान किया है । चतुर्थ सर्ग में वृन्दावन का एक चित्र देखिए जिसमं वृन्दावन की दिव्यता का वर्णन किया गया है । वृक्षों की पंक्तियाँ और उन पर लिपटी हुई लताएँ हैं और बीच में कृष्णा नदी का निर्मल जल है जिसमें अनेक रंग-विरंगे कमल खिले हुए हैं :—

दिव्य द्रुमनि की पाँति लसति सब भाँति सुहाई ।
ललित लता बहु लहलहाति जिन सों लपटाई ।।
स्योम-वरनि मन हरनि नदी कृस्ना अति निर्मल ।
कलित-कुञ्ज-बहु-रंग बहति तहँ मंजु मधुर जल ।।४।११

कवि ने अलौकिक भावों को उद्दीप्त करने के लिए तथा भक्ति की तन्मयता उत्पन्न करने के लिए चतुर्थ अंक में राधाकृष्ण के दिव्य सिंहासन का जो वर्णन किया है उसमें प्रकृति के माध्यम से एक विलक्षण भाव को जागृत करने का प्रयत्न किया गया है । इस वर्णन में पहले कवि ने सहस्र दल कमल की अलौकिक शोभा, पुनः उस पर षोड़श दल कमल और उस पर अष्टदल कमल की शोभा का चित्रांकन किया है :—

मध्य कंज पर मंजु रतन सिंहासन सोहै ।
जाकी सुखमा कहत सहस-मनि-धर-मन मोहै ।।
ताल-मेल सौं मेलि रतन बहुरंग लगाये ।
जिनकी द्युति सौं कोटि नवग्रह रहत चकाये ।। ४।१९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ दिव्य शोभा-दर्शन से उत्पन्न विस्मय के भाव का चित्रांकन किया गया है। चित्रात्मक रूप में प्रकृति का दूसरा रूप बाह्य चित्रण से सम्बन्धित है जिसमें कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सौन्दर्य चेतना का परिचय प्राप्त होता है। इन चित्रणों में कोमल भावनाओं द्वारा सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यंजना की गई है। उदाहरण के लिए सप्तम सर्ग का एक वर्णन देखिए, जिसमें आकाशमार्ग से गिरती हुई गङ्गा पर पड़ने वाली सूर्य किरणों के प्रकाश से निकलती हुई सतरंगी आभा का वर्णन है :—

मनु दिगङ्गना गङ्ग न्हाइ कीन्हे निज अङ्गी।
नवभूषन नव-रत्न-रचित सारी सतरङ्गी ॥
गङ्गागम-पथ माहिं भानु कैधौं अति नीकी।
बांधी बन्दनवार विविध बहु पटापटी की ॥७।३४

मानवीकरण

कवि ने अनेक स्थानों पर प्रकृति का मानवीकरण करके अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मानवीकरण की प्रकृति छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है किन्तु रत्नाकर के काव्य में अनेक स्थानों पर प्रकृति का यह मानवीय रूप उभर कर प्रकट हुआ है। इस चित्रण द्वारा प्रकृति का सजीव रूप प्रस्फुटित हो उठा है। यह सजीवता गङ्गावतरण की पौराणिक कथा से जुड़कर और भी अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। प्रकृति के नाना रूपों के दैवी स्वरूप की कल्पना तो हमारे धर्म का विशिष्ट अङ्ग ही है। वेदों, शास्त्रों और पुराणों में इसका अनेक रूपों में वर्णन है।

गङ्गावतरण के समय पवन के प्रवाह से जल की बड़ी-बड़ी बूंदें गेदों के समान प्रतीत हो रही हैं जिसको पवन-रूपी नट उछाल रहा है :—

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौ वेग उघारत।
जल कंदुक के वृन्द पारि पुनि गहत उछारत ॥

× × ×

इसी प्रकार गङ्गागम के समय पर्वतों के हृदय धड़क पड़े, कहकर मानवीय भावनाओं का आरोपण किया गया है :—"विंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु-मन्दर हिय हहरे।"

दार्शनिक तथ्य निरूपण

मानवीकरण और रहस्यात्मक तत्वनिरूपण छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है किन्तु यह कोई नवीन घटना हमारे साहित्य में नहीं है। प्राकृतिक शक्तियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से आध्यात्मिक शक्तियों का जागरण सदैव से ही हमारे धर्मशास्त्रों के निरूपण का विषय रहा है। गंगावतरण में कवि गंगागम के सौन्दर्य का चित्रण करता हुआ मानों गूढ़ भावों में खो जाता है। गंगा की तरंगें पवन के वेग से छिन्न भिन्न होकर अनेक रूपों में प्रकट होती हैं। कहीं दो दो चार चार धारायें साथ साथ मिलकर चल रही हैं पुनः वे सभी धारायें एक होकर जुड़ कर चलती हैं। कवि यहाँ दृष्टांतालंकार के माध्यम से दार्शनिक भावों का चित्र अंकित करता है। वह कहता है कि जिस प्रकार ब्रह्मा का एक ही रूप माया के कारण अनेक रूप धारण करता है किन्तु जब संसार के मिथ्यात्व का ज्ञान हो जाता है तो आत्म-ज्ञान के कारण जीव पुनः ब्रह्म होकर एक रूप हो जाता है, इसी प्रकार गंगा की एक धारा पहले अनेक रूप धारण करती है, पुनः एक रूप होकर चलती है :—

जैसे एकै रूप प्रबल माया-बस मैं परि।
बिचरत जग मैं अति अनूप बहु बिलग रूप धरि॥
पै जब ज्ञान-बिधान ईस सनमुख लै आवै।
तब एकै ह्वै बहुरि अमित आतम-बल पावै॥७।२८

आलंकारिक रूप

आलंकारिक रूप में प्रकृति चित्रण का अभिप्राय कवि द्वारा कृत वर्णन में अलंकारों के माध्यम से किए गये प्राकृतिक चित्रों से है। रत्नाकर ने सप्तम और अष्टम तथा चतुर्थ सर्ग में अलंकारों के माध्यम से प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य के अनेक चित्र अंकित किए हैं। कवि का प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा और संदेह है। इन दोनों के माध्यम से कवि ने सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना की है। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से गङ्गा की धारा का एक चित्र देखिये जो अत्यन्त आकर्षक है। गङ्गा की धारा अपार वेग से नीचे की ओर बढ़ी आ रही है और उस पर सूर्य की किरणों के पड़ने से जो सतरंगी आभा दिङ्मण्डल में बूँद-बूँद के रूप में छिटक पड़ी है उसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानों कोई चतुर किसान हीरे की राशि ओसा रहा हो :—

कबहुँ सुधार अपार बेग नीचे कौं धावत।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवत॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य खेत-उत्पन्न हीर की रासि उसावत॥७।२४

उत्प्रेक्षा और संदेह मिश्रित रूप में कवि की एक भावाभिव्यंजना देखिये जिसमें गंगा की धारा कवि को मुक्ति-जल से भरी हुई स्वाति की घटा सी प्रतीत होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और उस धारा में गिरती हुई मछलियाँ, मकर और जल के सर्प, चमकती हुई विद्युल्लता के समान दिखाई दे रहे हैं—

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधों आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी।।
मीन-मकर-जल-व्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल छवि छाई।।७।२१

संदेह अलंकार के माध्यम से कवि ने एक ओर गङ्गा की धारा का वर्णन तारों की सेना के रूप में किया है और दूसरी ओर देवों द्वारा बरसाई गई पुष्प-राशि के रूप में—

कै निज नायक बँध्यो विलोकत व्याल-पास तें।
तारनि की सेना उदंड उतरत अकास तें।।
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत।
हर हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत।।७।२५

इस प्रकार रत्नाकर ने प्रकृति के अनेक रूपों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उनकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म है कि कहीं कोई अंश छूटने नहीं पाया, कवि ने अपने भावों को प्रगट करने के लिए केवल उपमानों का ही आश्रय नहीं लिया है, अनुभावों के विविध साधनों द्वारा उसे नितान्त जीवन्त स्वरूप प्रदान किया है। कवि की कला पर वाल्मीकि रामायण और संस्कृत के पुराणसाहित्य का इतना प्रभाव है कि कहीं कोई चित्र छूटने नहीं पाया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषा सौष्ठव

भावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन भाषा है। भाषा जितनी अधिक शक्तिशालिनी, प्रभावपूर्ण और वेगवती होती है उतने ही उसके भीतर प्रविष्ट भाव गतिशील होते हैं। कुशल कवि भाषा की सहायता से भावों को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। भाषा के सौष्ठव और माधुर्य के लिए शब्दों का सुन्दर और मधुर होना आवश्यक है। शब्द जितने सुन्दर, सरस और मधुर होंगे, भाषा भी उतनी सुन्दर, सरस और मधुर होगी। उपयुक्त शब्द विन्यास द्वारा कवि की कला आभूषणों में जड़े रत्नों के समान देदीप्यमान हो उठी है। कवि-कला में भाषा और भाव के सुन्दर समन्वय से एक विलक्षण शक्ति का विकास होता है। इस शक्ति के विकास के लिए शब्दों का लाक्षणिक और व्यंजनात्मक प्रयोग करने के साथ संगीतात्मक शैली का आश्रय लेना कवि के लिए आवश्यक हो जाता है।

रत्नाकर जी की भाषा वही प्राचीन व्रजभाषा है जो रीतिकाल में बड़े-बड़े कवियों की भाषा रह चुकी है। यद्यपि रीतिकाल के कवियों के द्वारा व्रजभाषा बार-बार सुसज्जित की गई किन्तु उसके शृङ्गार की पूर्णता तो रत्नाकर द्वारा ही हुई। महाकवि सूरदास ने व्रजभाषा का सबसे अधिक शृङ्गार किया था, बिहारी, मतिराम और देव ने उसको और अधिक सँवारने सजाने का प्रयत्न किया पर रत्नाकर ने तो उसके शरीर और आत्मा का अनुपम शृङ्गार किया। इस प्रकार व्रजभाषा के इतिहास में रत्नाकर की भाषा सबसे अधिक शुद्ध, कलापूर्ण और गौरवमयी है।

रत्नाकर जी व्रजभाषा के प्रकांड पण्डित थे। यद्यपि प्रारम्भ में उनका सम्बन्ध फारसी से अधिक था किन्तु धीरे-धीरे वह सम्बन्ध टूट गया और व्रज-भाषा से उनका अधिकाधिक सम्बन्ध जुड़ता गया। उनके हृदय में व्रजभाषा के प्रति ऐसा अनन्य प्रेम जागृत हुआ कि वे अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्ययन में जुट गये। उन्होंने व्रजभाषा के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया और समय-समय पर व्रज की यात्रा भी की। इस प्रकार उन्होंने व्रजभाषा का प्रगाढ़ और वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया। उनके ज्ञान की प्रगाढ़ता स्पष्ट रूप से उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित दिखाई देती है।

व्रजभाषा का जैसा शुद्ध रूप रत्नाकर में दिखाई देता है उतना कम कवियों में उपलब्ध होता है। व्रजभाषा के वे वैज्ञानिक कलाकार हैं। व्याकरण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियमों के अनुसार उनकी भाषा नितान्त शुद्ध है। क्रिया, लिंग, रूप, कर्म और कर्त्ता का प्रयोग, उसकी गतिविधि के अनुसार ही उन्होंने किया है। रत्नाकर जी की भाषा कई दृष्टिकोणों से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस महत्व का कारण उनके भाषा में स्थित कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं जिनके आधार पर गंगावतरण के भाषा-सौष्ठव को हम समझ सकते हैं—

१—क्षेत्र का विस्तार
२—लक्षणा द्वारा भावाभिव्यंजना
३—लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग
४—शब्दालंकारों का प्रयोग
५—सौन्दर्य और माधुर्य
६—ओज और प्रवाह
७—शुद्धता

क्षेत्र का विस्तार

रत्नाकर जी ने व्रजभाषा के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए सराहनीय प्रयत्न किए। उन्होंने समय और युग की माँग के अनुसार केवल क्षेत्रीय शब्दों का ही प्रयोग न करके एक ओर तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया और दूसरी ओर यत्र-तत्र फारसी शब्दों का प्रयोग किया। बनारसी भाषा का भी प्रयोग उन्होंने वड़ी निपुणता से किया है किन्तु इन शब्दों के प्रयोग में उन्होंने व्रजभाषा की प्रकृति का सदैव ध्यान रखा है। बाहरी शब्दों का प्रयोग करते समय भी वे उनका नियंत्रण व्रजभाषा से ही करते हैं जिससे बाहरी शब्द भी व्रजभाषा के ही ज्ञात होते हैं। उन्होंने इन शब्दों को इस प्रकार मिश्रित कर दिया है कि कहीं भी कोई पृथक्ता नहीं दिखाई देती। इस प्रकार उनके काव्य में व्रजभाषा के शब्दों के साथ ही अन्य भाषाओं की मैत्री का सुन्दर उदाहरण मिलता है।

रत्नाकर ने व्रजभाषा का बहुत समय तक अध्ययन किया था जिसके परिणामस्वरूप उनकी भाषा में व्यापक पदावली मिलती है। जिन जिन श्रेष्ठ कवियों में जों उपयुक्त शब्द मिले उनको उन्होंने अपना लिया। इस दृष्टि से संस्कृत के तत्सम रूपों के बहुत से शब्द उनकी भाषा में आये। संस्कृत के बहुसंख्यक शब्द अपभ्रंश रूप में तथा अनेक शब्द तत्सम रूप में व्रजभाषा में सदैव से ही प्रचलित रहे हैं। कुछ कवियों में संस्कृत के तत्सम रूपों के प्रति ही आग्रह अधिक लक्षित होता है। उदाहरणार्थ गोस्वामी तुलसीदास ने विनय पत्रिका के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरंभ में पूर्ण संस्कृतमय भाषा लिखी है परन्तु गीतावली में वही प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है जिसमें आवश्यकतानुसार संस्कृत के तत्सम पदावली का प्रयोग भी किया गया है। रत्नाकर जी की भाषा में संस्कृत की तत्सम पदावली का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है परन्तु सर्वत्र उन्होंने ऐसा नहीं किया है। संस्कृत शब्दों को ग्रहण करते समय भी उनके श्रुति मधुर तथा काव्योपयोगी होने का ध्यान रखा गया है।

ब्रजभाषा में लम्बे समासों की परिपाटी कभी प्रचलित नहीं रही। परन्तु रत्नाकर जी ने बहुत लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग किया है:—

गंगावतरण के त्रयोदश सर्ग में गंगास्तुति के समय संस्कृत के लम्बे समासों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। वस्तुतः इस पर संस्कृत के स्तोत्रों का स्पष्ट प्रभाव है:—

जयं तांडव-द्रव-भूत-ब्रह्म-मूरति अति पावनि।
प्रबल-प्रभाव-अमोघ सकल-अघ-ओघ-नसावनि॥
चतुरानन हरि-ईस-परम-पद-बिसद-वितरनी।
दस पातक-असुरारि-रूप दस इक-अवतरनी॥
जय गिरीस-सुभ-सीस-सरस-सोभा-संचारिनि।
हृत-त्रिलोक-त्रय-ताप-जनित-संताप निवारिनि॥
जय अमृतासन-वृन्द-तोष-निज-बाढ़-वढ़ावनि।
स्वल्प-सुधा-कृत-देव-दनुज-दल-द्रोह-बहावनि॥ १३।२–४

आवश्यकतानुसार संस्कृत के संधि नियमों का भी उपयोग किया गया है—

परम आत्म संतोष देत निज चरित सुधारत।
कहुँ सज्जन स्वर्गासा करि निज जनम बिगारत॥

यहाँ 'स्वर्गासा' का प्रयोग दर्शनीय है।

प्राचीन काल से ही ब्रजभाषा का प्रयोग साहित्य की सामान्य भाषा के रूप में सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में हुआ। रीतिकाल के बहुत से कवि, ब्रजभूमि से पूर्व प्रान्तों के थे, जिनके द्वारा ब्रजी को प्रौढ़ता प्राप्त हुई। ये कवि दैनिक जीवन में ब्रजभाषा का प्रयोग नहीं करते थे क्योंकि उनकी मातृभाषा अवध की कोई न कोई बोली थी। क्रमशः इन प्रान्तीय बोलियों का प्रभाव साहित्यिक भाषा पर पड़ने लगा। यह प्रभाव पदावली तक ही सीमित नहीं रहा। क्रियाओं के रूप तक इससे प्रभावित होने लगे। काशी क्षेत्र के कवियों जैसे—रघुनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हनुमान आदि की भाषा पर पूर्वी अवधी का प्रभाव लक्षित होता है। रत्नाकर जी ने बड़ी स्वच्छन्दता से पूर्वी प्रान्तों के शब्दों को ग्रहण किया है। उनमें से बहुत से प्रयोग तो काशी प्रान्त में ही प्रचलित हैं। कवि की मँजी हुई भाषा के बीच ये शब्द सहसा लक्षित नहीं होते।

गंगावतरण के अष्टम सर्ग से लेकर दशम और एकादश सर्गों में, ये प्रयोग अधिक दिखाई पड़ते हैं। विशेषतया नागरिकों के स्नान-वर्णन के अवसर पर वाराणसी के घाटों के स्वाभाविक वर्णन प्रसंग में, जैसे—

मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाये।
लरि अति ऊँचे उलरि गोति गुथि चलत सुहाए॥

(ii) ऐपन घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति।

(iii) लचकावति कोउ लंक वंक भृकुटी मचकावति॥

इसमें बहुत से ऐसे शब्द, प्रयोग में आये हैं जैसे हिरकि, बिसाहि, उतान, निवुकि, भकुआने, गुझरौटा, कछौटा, निसारति, चुभकी, दंगल आदि।

कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका उच्चारण तथा रूप एक है परन्तु पूर्व तथा पश्चिम में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है—

गारना—पूर्वी अर्थ—निचोड़ना
पश्चिमी अर्थ—नष्ट करना

कोउ ऊरुनि बिच दाबि वसन गीले गहि गारति।
उसरत पट कटि उरसि संक जुत वंक निहारति॥

अन्यत्र 'गारना' का प्रयोग पश्चिमी अर्थ में हुआ है—

पच्छिराज-बेग कौ गुमान गारिबे कौ गुनि।
औसर अनौसर पियादे पाय आए हैं॥

चाँपि—पूर्वी अर्थ—(दबाकर) नष्ट करना
पश्चिमी अर्थ—दबाकर

× × ×

वर बाँहनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय मिनि॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त उद्धरण में 'चाँपि' का अर्थ दवाना है। अन्यत्र इसका नष्ट करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है—

चपल चकत्ता की महत्ता अरु सत्ता चाँपि।
चंपत कौ नन्दन अमंद कहवाऊँ मैं॥

यहाँ 'चाँपि' का पूर्वी अर्थ 'नष्ट करना' है।

रत्नाकर के कुछ प्रयोगों पर अंग्रेजी लाक्षणिकता की भी छाप है जैसे 'चखरीतैं' में (Vacant look) का स्पष्ट आभास मिलता है—

"इमि बिलखत बतरात थकित चितवत चखरीतैं।"

गंगावतरण की भाषा पर बिहारी की सतसई की भाषा स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्य-खंड भी मिलते हैं। जैसे—

(१) सुनकिरवा की आड़ ताड़ तरकी तरपीली।

(२) ठाढ़े गाढ़े कुचनि चिहुँटनी-माल सजीली।

(३) रंगे चोल रंग चीर लगे भोडर-नग चमकत।

इन शब्दों के बिना भी उनका काम चल सकता था किन्तु इसमें कवि की मुख्य योजना क्षेत्र के विस्तार की है।

कहीं-कहीं इस व्यापकता की प्रवृत्ति से उन्होंने पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी किया है, जो उचित नहीं जान पड़ता। किन्तु ऐसे प्रयोग कम हैं—

(१) प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरे सुखकारी।
ह्वै थाई उत्साह भयौ रति कौ संचारी॥

(२) कहुँ विस्तर थल पाइ वारि-विस्तार बढ़ावति।
लघु गुरु वीचि पसारि छंद प्रस्तार पढ़ावति॥

कुछ अपभ्रंश-काल के अवाइ (अवाक्) अकह (अकथ) आदि शब्दों का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त अरबी फारसी के शब्दों का भी अपभ्रंश रूप (तद्भव रूप) में प्रयोग हुआ है। हौसलों, अंदेशो, गौर, जुलम आदि ऐसे ही शब्द हैं। कुछ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी हुआ है जैसे 'आनि' क्रिया का अर्थ 'लाकर' होता है परन्तु सूरदास आदि कवियों ने इसका प्रयोग 'आकर' अर्थ में किया है। इसी अभिप्राय से रत्नाकर ने भी उक्त क्रिया का प्रयोग प्राचीन ढंग पर किया है। प्राचीन प्रयोगों को छोड़ने से भाषा में नवीनता आती है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) तव भूपति-ढिग आनि व्यवस्था विषम वखानी।
(२) सुन्दरवन मैं भरति भूरि सुठि सुन्दरताई।
सगर-सुतनि-हित मानि आनि सागर समुहाई ॥

'आनि' का प्रयोग 'लाकर' के अर्थ में भी हुआ है—

'करि कुवेर सौं जुद्ध आनि धन सुद्ध चुकौहैं।' आने के अर्थ में 'आइ' का भी अनेक स्थानों पर प्रयोग मिलता है—

कपिल-धाम ढिग आइ धाइ चहुँ ओर उमाही।

कुछ शब्दों का प्रयोग कभी एक और कभी वहुवचन में किया गया है। उदाहरण के लिए 'पाय' शब्द देखिये—

ग्राम-देवतनि पूजि दान वहु भाँतिनि कीन्यौ।
नाइ ईस कौं सीस पाय पुर-अन्तर दीन्यौ ॥

यहाँ 'पाय' शब्द एक वचन में प्रयुक्त हुआ है। अन्यत्र इसका प्रयोग वहुवचन में हुआ है—

मुनि-नाथहिं सिर नाइ पाय अन्तःपुर धारे।

कहीं-कहीं लिंग सम्वन्धी त्रुटियाँ भी रह गई हैं—

(१) फिर्‌यौ अस्व चहुँओर छोर छिति की सव छानी।
(२) फिर यह आनन कहाँ-कहाँ यह नैन अभागी।

'छोर' और 'नेत्र' पुंलिग है जिसका यहाँ स्त्रीलिंग में प्रयोग हुआ है। प्राण शब्द का प्रयोग व्रजभाषा में वहुवचन में होता है किन्तु कवि ने एक स्थान पर एक वचन में किया है—

अरे प्रान किहिं आस रह्यौ अव वेगि नसत ना।

कुछ क्रियाओं पर पूर्वी भाषा का प्रभाव है—

(क) साँचहि अव समुझात वात हम अनुचित कीन्हीं।
(ख) एतहिं मैं रोवत रोवत सो विलखि पुकारी।

लक्षणा द्वारा भावाभिव्यंजना

लक्षणा भावाभिव्यंजना का आवश्यक उपकरण है। रत्नाकर जी ने ऐसे काव्योपयोगी प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया है। मानव हृदय की संवेदनशील वृत्तियाँ बाह्य वस्तुओं के संसर्ग से प्रभावित होती हैं। कवि कला का चरमोद्देश्य इन्हीं रागात्मिका वृत्तियों को उच्छवसित करने से है। इसके लिए कवि को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संवेदन के स्वरूप को मूर्त्त तथा ग्राह्य रूप में उपस्थित करना पड़ता है। इस कार्य में लक्षणा शक्ति कवि की बहुत सहायता करती है। लक्षणा द्वारा भाव मूर्त्त रूप में उपस्थित होकर सुग्राह्य होते हैं और हमारे हृदयों से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

गङ्गावतरण में आनन्द के भाव को व्यक्त करने के लिए एक लाक्षणिक प्रयोग देखिये—

मख राखन कौ रंग पाइ नरपति हरियाने।
मानौ सूखत सालि-खेत पर घन घहराने॥

यहाँ 'हरियाने' शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया गया है। यहाँ रंग शब्द श्लिष्ट है (ढंग, रङ्ग) जिससे यह विशेष महत्त्व का है। 'हरियाने' का वाच्यार्थ 'हरा होना' है। हरे होने के लिए रंग की आवश्यकता है। इस आवश्यकता-पूर्त्ति में आभास रूप से रंग शब्द सहायक हो रहा है।

लक्षणा का एक और स्वाभाविक प्रयोग देखिये—

भव-वैभव कौ जदपि भूप-गृह अमित उज्यारौ।
तउ इक सुत कुल-दीप बिना सब लगत अँध्यारौ॥

उपर्युक्त उद्धरण में 'उज्यारौ' तथा 'अँध्यारौ' शब्द विशेष ध्यातव्य हैं। ये दोनों प्रयोग वर्ण्य विषय को गोचर बनाकर हमारे हृदय के निकट पहुँचा देते हैं। पुत्र न होने से हृदय में वही अँधेरा रहता है जो दीपक न होनेसे प्रत्यक्ष रहता है, इसी प्रकार वैभव से प्राप्त आनन्द, आशा इत्यादि की व्यंजना 'उज्यारौ' से हो रही है।

हमारे देश की उष्णता के कारण यहाँ शीतलता विशेष प्रिय है और इसी कारण इसका लाक्षणिक प्रयोग संतोष और सुख के अर्थ में होता है। 'हृदय जुड़ाना' ऐसा ही एक प्रयोग है जिसकी व्यंजना भगीरथ की प्रार्थना में दिखाई देती है। भगीरथ के कठोर तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा का आविर्भाव होता है किन्तु भगीरथ को तो केवल उनके कमंडल का 'चुल्लु भर पानी' ही चाहिए जिससे उनका मानस ग्रीष्म पीड़ित धरती पर पड़ी हुई वर्षा की बूँद के समान शान्ति का अनुभव करेगा—

ताही सौं तप-ताप दूरि करि अङ्ग जूड़ैहैं।
ताही सौं सब साप दाप पितरनि के जैहैं॥

यहाँ 'जुड़ैहैं' के लाक्षणिक प्रयोग द्वारा संतोष आदि की व्यंजना हो रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य बाह्य संवेदन का आभ्यन्तर प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों द्वारा करता है परन्तु ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होने वाले संवेदन समान नहीं होते। कुछ ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य संवेदन को सूक्ष्म रूप में ग्रहण करती हैं कुछ स्थूल रूप में। उदाहरणार्थ जिन वस्तुओं का स्पर्श या दर्शन हो सकता है उन वस्तुओं का ज्ञान हमें अधिकप्रत्यक्ष होता है। लक्षणा सूक्ष्म संवेदन को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों की अनुभूति पर अधिक स्थूल या मूर्त्त संवेदन को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय के अनुभव का आरोप करती है। रत्नाकर ने ऐसी लक्षणाओं का बहुत प्रयोग किया है, कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

(i) विंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु मंदर हिय हहरे।

(ii) चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन।

(iii) निज विलंब मन मानि सकुच बोले मृदु बानी।

उपर्युक्त पंक्तियों में 'पर्वतों का हृदय दहलना' 'चन्द्रमा का चकित रह जाना' 'वाणी का कोमल होना' लाक्षणिक प्रयोग है। 'चन्द्रमा का चकित रह जाना' कहकर बाह्य जगत् की वस्तुओं का मनुष्य के स्वभाव पर आरोप किया गया है। प्रथम उदाहरण में भी यही बात है।

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग

कवि लाक्षणिक प्रयोगों की उद्भावना किसी न किसी प्रयोजनवश करता है जिसे हम प्रयोजनवती लक्षणा के भीतर ले सकते हैं। निरन्तर प्रयोग में आते आते ये रूढ़ हो जाते हैं। इन्हीं रूढ़ लाक्षणिक प्रयोगों को लोकोक्तियों और मुहाविरों के रूप में ग्रहण किया गया है। वस्तुत: मुहाविरे साधारण उक्तियों की अपेक्षा भावों को अधिक मार्मिकता से प्रकट करते हैं। इसका कारण उनके मूल में रहने वाली सांकेतिकता या लक्षणा है।

ब्रजभाषा या अवधी के प्राचीन कवियों ने लोकोक्तियों का तो समुचित उपयोग किया परन्तु मुहाविरों की ओर ध्यान नहीं दिया। कविवर ठाकुर में लोकोक्तियों का और बिहारी में मुहाविरों की वक्रता का उदाहरण अवश्य मिलता है। खड़ी बोली के कवियों ने तो इनकी उपेक्षा ही कर दी है। कविवर रत्नाकर ने फारसी, उर्दू आदि साहित्यों का अध्ययन किया था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी। वे उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी के साथ साथ फारसी का अध्ययन करते रहे। इन परिस्थितियों के कारण भाषा की विशेषताओं की ओर उनका ध्यान गया। यद्यपि वे दिन ब्रजभाषा की उपेक्षा के थे, किन्तु रत्नाकर के कलापूर्ण हाथों में पड़कर भाषा फिर निखर आई। उनमें नवीन आकर्षण तथा नव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन आ गया। रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में होने वाले कवियों से भाषा का जो रूप विकृत हो चुका था, द्विजदेव और भारतेन्दु आदि से उसका बहुत कुछ संस्कार हुआ परन्तु रत्नाकर ने मुहाविरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा बहुत सी काव्योपयोगी विशेषताओं का समन्वय किया।

रत्नाकर की कुछ उक्तियों का सम्पूर्ण चमत्कार मुहाविरों की वक्रता पर ही निर्भर है। मुहाविरों द्वारा अनुभावों की व्यंजना करके अनेक स्थानों पर कवि ने रस-सृष्टि भी की है। सगर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा अचानक खो गया है, किसी को इस उल्लास के समय ऐसी आशा तो थी नहीं, इसलिए सभी चकित रह जाते हैं और एक दूसरे को प्रश्न वाचक दृष्टि से देखने लगते हैं। निम्नांकित कथन में आश्चर्य के भाव की व्यंजना देखिए—

परयौ रंग मैं भंग दंग ह्वै सकल विचारत।
मूक भाव सौ एक एक कौ वदन निहारत।

यहाँ 'रंग में भंग पड़ना' मुहावरे का लाक्षणिक प्रयोग है। इसके अतिरिक्त दंग रह जाना, मुख ताकना, मुहाविरों द्वारा आश्चर्य भाव की व्यंजना की गई है। इसी प्रकार निम्नांकित पद में मुहाविरों द्वारा अनुभावों के माध्यम से क्रोध के भाव की व्यंजना देखिये—

सुनि अति अनहित वैन भए नृप-नैन रिसौंहैं।
फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौंहैं॥

रत्नाकर जी ने कहावतों का अधिक प्रयोग नही किया है पर जहाँ भी किया है कुछ सूझ के साथ। महाराज सगर युद्ध का अनुष्ठान करना चाहते थे पर एकाएक अश्व खो जाने से बड़ा विघ्न पड़ गया। इस प्रसंग में 'होम करते हाथ जला' का प्रयोग बड़ा सार्थक है। मृत पड़े हुए सगर के पुत्र इस प्रकार पड़े हुए हैं मानों घोड़ा वेच कर सोये हों। 'घोड़ा वेच कर सोना' कहावत यहाँ बड़ी सटीक है—

हाय तात यह भयौ घात बिन बात तिहारी।
होम करत कर जरयौ परयौ विधि बाम हमारी॥
आए बाजी लेन बेच बाजी इमि सोवत।
उठत क्यौं न पितु लखत बाट उत इत सिसु रोवत॥

इसी प्रकार निम्नांकित छंद में 'चोर का जी आधा' प्रयोग की सार्थकता देखिये। सगर अपने पुत्रों की वीरता को उत्तेजित करते हुए उनको शीघ्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही घोड़ा खोजने को आदेश देते हैं—क्योंकि उनमें तो इतनी सामर्थ्य है कि बड़े-बड़े शत्रुओं को पदाक्रान्त कर सकते हैं फिर उसको परास्त करना कौन सी बड़ी बात है, जो चोरी करने से आधे प्राण वाला पहले से ही है—

देव दनुज थहरात देखि दल तात तिहारो।
कहा बापुरो चपल चोर आधं जियवारो॥

रत्नाकर जी ने कहावतों और मुहाविरों का एक साथ ही सम्मिलित प्रयोग करके विशेष चमत्कार उत्पन्न किया है जैसे—

कोउ पापिहिं पंचत्व प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावन-बीर बढ़त चौ चंद मचावत॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत।
नौ द्वै ग्यारह होत तीन पाँचहि बिसरावत॥

यहाँ गङ्गा के तीर पर पहुँचते ही पापियों के मुक्त होने का संकेत बड़ी लाक्षणिक शैली में किया गया है। साथ ही यमगणों का उल्लास और उत्साह पूर्वक बढ़ना और पुनः निराश होकर भाग जाने का वर्णन बहुत सांकेतिक है।

कतिपय स्थानों पर मुहाविरों के प्रयोग में त्रुटियाँ रह गई हैं। पर इनका स्थान अत्यल्प है। उदाहरणार्थ 'घात लगाना' का अभिप्राय कोई अच्छे उपाय की ओर संकेत नहीं करता। पंचम सर्ग में राजा सगर, अश्वमेध यज्ञ से निवृत्त होकर गङ्गा को पृथ्वी पर लाने का उपाय करते हैं किन्तु बात बनती नहीं और आयु बीत जाती है।

लाईं घात अनेक बात नहिं कछु बनि आई।
ऐसहिं सोच-बिचार माहिं नृप आयु सिराई॥

इसी प्रकार 'पार पाने' का प्रयोग ठीक नहीं हुआ है:—

सोच्यौ जौ यह बयस वृथा ऐसहिं चलि जै हैं।
तौ उतरत दिन माहिं कठिन तप पार न पैहैं॥

यहाँ 'पैहैं' क्रिया का कर्त्ता 'तप' ही प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में यदि 'पैहै' होता तो तप के पीछे विभक्ति लगा मान कर अन्वय किया जा सकता था। संभवतः 'पार पड़ना' प्रयोग के स्थान पर 'पार पाना' लिखा गया है। पार पड़ने का इस प्रकार प्रयोग होता है:—

'हमसे अब, पढ़ना लिखना पार न पड़ेगा'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पछाँह की ओर 'पार पड़ने' का प्रयोग 'पटने' (निभने) के अर्थ में भी-होता है जैसे 'हमारी उनसे अब पार न पड़ेगी'।

इसी प्रकार 'नैन निद्रा नहिं लागति' प्रयोग में शिथिलता आ गई है। 'निद्रा नहीं लगती' ही पर्याप्त था—

तउ पितरनि की दुसह-दसा-चिंता नित जागति।
परत न चल चित चैन नैन निद्रा नहिं लागति ॥

शब्दालंकारों का प्रयोग

शब्दालंकारों का प्रयोग भाषा के बाह्य-स्वरूप का अलंकरण करने के लिए किया जाता है, जिससे भाषा का स्वरूप आकर्षक और कर्णसुखद हो जाता है। इसका सम्बन्ध सीधे उच्चारण से होने के कारण व्यञ्जना में बहुत सहायता मिलती है। रत्नाकर ने अनुप्रासों की योजना बड़े स्वाभाविक रूप में की है। उन्होंने स्वाभाविक तथा श्रुति-मधुर ध्वनि की रक्षा के लिए भाषा को बड़े संयत और कलापूर्ण प्रवाह पर प्रवाहित किया। ऐसे कवियों की संख्या कम है। "पद्माकर का नाम ऐसे कवियों में बड़े आदर से लिया जाता है परन्तु रत्नाकर की भाषा के सामने उनकी भाषा भी हलकी हो जाती है। रत्नाकर की भाषा गंभीर नदी के समान और पद्माकर की भाषा पहाड़ी झरने के समान है। उनकी भाषा का गठन और गाम्भीर्य बिहारी के समान है।"[1] रत्नाकर की भाषा में अनुप्रासों की प्रभावपूर्ण योजना का एक उदाहरण देखिये:—

सींचि स्वाति जल मुक्ति-खेत-वल बिपुल बढ़ावति।
भव-भय-भंजनि संभु-सक्ति पर पानि चढ़ावति ॥
महा मसानहिं परम-बाट को घाट बनावति।
चिर-इच्छित-फल-लाहु मुमुच्छनि तुच्छ जनावति ॥११।४

इसमें संस्कृत की समासमयी शैली के साथ ही अनुप्रासों की कर्णसुखद योजना की गई है। अनेक स्थान में भावाभिव्यंजना के लिए अनुप्रासों का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है। एकादश सर्ग में गङ्गा के स्पर्श से मीन मकर आदि जल जीवों की भी मुक्ति का यह वर्णन देखिये—

मीन मकर सिसुमार उरग आदिक उतराने।
लहत गंग-सुभ-परस-पान परमानंद-साने ॥
पाप-साप-बस बिवस परे तिनके जे तन मैं।
ते धरि धरि बर बपुप बेगि बिहरत सुर-गन मैं ॥

१—कविवर रत्नाकर—पं० कृष्ण शंकर शुक्ल एम. ए.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुतः सम्पूर्ण गङ्गावतरण में अनुप्रासों की ऐसी चित्रशाला है जिसमें कवि ने भावों की मधुर तूलिका से अनेक सुखद-रङ्गों की योजना की है।

वीप्सा अलंकार भी भावाभिव्यंजना के आवश्यक उपकरण हैं। कुछ ऐसे भाव होते हैं जो शब्दों की आवृत्ति से सरलतया प्रकट होते हैं। रत्नाकर ने इस अलंकार का प्रयोग भावों को तीव्र करने के लिए विशेष रूप से किया है। द्वितीय सर्ग में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा खो गया है किन्तु किसी को घोड़ा चुराने वाले शत्रु का पता नहीं लग पा रहा है। उस अज्ञात शत्रु के प्रति जो क्रोध का उबाल है वह प्रकट होने के लिए मानो छटपटा रहा है और इधर योद्धाओं की तलवारें भी कोषों से निकली पड़ रही हैं, धनुर्धारियों के बाण तरकश से छूटना ही चाहते हैं। ऐसे उत्तेजक उत्साह के भाव में वीप्सा का सहयोग देखिये—

कढ़ी परति करवाल कोस सौं चमकि चमकि कै।
निकसे आवत वान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
उठि उठि कर रहि जात कसकि तिनके बाहन कौं।
पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उतसाहन कौं॥

कहीं कहीं पुनरुक्तिवदाभास द्वारा भी भावों को तीव्र बनाने का प्रयत्न हुआ है। गङ्गा के आगमन से सम्पूर्ण पृथ्वी में उथल पुथल मच जायगी। आकाश पाताल और मृत्युलोक में उपद्रव का आभास देने के लिए कवि ने जिन शब्दों की योजना की है उसमें पुनरुक्ति का स्पष्ट आभास तो है ही ध्वन्यात्मकता भी अनुपम है—

धमकि धूम सौं धाइ धँसै जबहीं ब्रह्मद्रव।
उथल पुथल तल होइ रसातल मचहिं उपद्रव॥
जगत जलाहल होइ कुलाहल त्रिभुवन व्यापै।
ह्वै सनद्ध कटिवद्ध कौन थिरता फिरि थापै॥६।२१

कभी कभी श्लिष्ट शब्द का चमत्कार आलंकारिक विधान से बढ़ जाता है। ऐसे स्थानों पर श्लिष्ट प्रयोग तथा अलंकार परस्पर चमत्कार-वृद्धि के लिए प्रयुक्त हुए हैं—

घट शब्द का प्रयोग शरीर के अर्थ में भी होता है। निम्नांकित पंक्तियों में इसकी सार्थकता देखिये—

जौ अति उबलत सोक-सलिल दृग-पथ नहिं पैहै।
भूरि भाप सौ पूरि तुरत तौ घट फटि जैहैं॥

इसी प्रकार मग्न होने के अर्थ होते हैं आनन्द आदि भावों में विभोर होना तथा जल आदि में डूबना। इस दूसरे अर्थ की रक्षा के लिए आनन्द को नद बनाया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानि कामना सिद्ध जानि तूठे दुखहारी।
भयौ भूप-मन मगन बढ़ै आनन्द-नद भारी ॥

सौन्दर्य और माधुर्य

'रत्नाकर' जी की भाषा बड़ी सुन्दर, सरस और मधुर है। अपने वास्तविक रूप में होने के कारण उसमें वास्तविक सौन्दर्य और माधुर्य है। व्रजभाषा अपने सौन्दर्य-माधुर्य और सरसता के लिए सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध है। इसकी सरसता और मधुरता से आकृष्ट होकर विदेशियों तक ने उसमें रचनाएँ की हैं। 'रत्नाकर' ने व्रजभाषा के इस प्राकृत सौन्दर्य और माधुर्य की रक्षा की है।

गङ्गावतरण में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिसमें भाषा-मार्दव के कारण काव्यगत सौन्दर्य निखर उठा है। सप्तम अष्टम सर्ग में गङ्गावतरण के प्रसंग में कवि ने कल्पना के जो रमणीय चित्र अंकित किए हैं, वे इसके उपयुक्त उदाहरण है। अष्टम सर्ग में गङ्गा के प्रवाह में मिले हुए हिमकणों की शोभा शरद्कालीन मेघों में चमकने वाले तारागणों के समान प्रतीत होती है, पुनः संदेह अलंकार द्वारा कवि ने उसी चित्र की कल्पना विधाता द्वारा पृथ्वी के शृङ्गारार्थ दी हुई 'तारबाने की साड़ी' के रूप में की है। तार बाने की शाटिका में बीच-बीच में तारे जैसी बूटियाँ बनी रहती हैं जिससे कवि ने यह अनोखी कल्पना की है। इस अनोखी कल्पना के साथ ही भाषा का माधुर्य दर्शनीय है :—

तिहिं प्रवाह मैं मिलित ललित हिम-कन इमि दमकत।
सारद बारद माँहि मनौ तारागन चमकत ॥
कै वसुधा – शृङ्गार – हेत करतार सँवारी।
सुघर सेत सुख–सार तार–बाने की सारी ॥८।२१

सौन्दर्य और माधुर्य का एक और उदाहरण देखिये। गङ्गा आकाश मार्ग से उतर रही हैं, उनकी तीव्र धारा सम्पूर्ण आकाश में इस प्रकार फैल गई है मानों किसी ने वितान तान दिया हो और उसके नीचे टपकती हुई बूंदें ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो वितान के नीचे मोतियों की झालर लटक रही हो।

रुचिर रजतमय कै वितान तान्यौ अति विस्तर।
झिरति बूंद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर ॥

ओज और प्रवाह

सौन्दर्य और माधुर्य के साथ ही उनकी भाषा में ओज और प्रवाह भी है। उन्होंने अपनी भाषा में- प्रवाह उत्पन्न करने के लिए लम्बी समासान्त पदावली का भी प्रयोग किया है। उनकी पदावली बड़ी श्रुति मधुर, सरस और व्यवस्थित है। व्यवस्था रत्नाकर की भाषा का प्रधान गुण है। सभी शब्द उपयुक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान पर स्थापित हैं। इसी व्यवस्था के कारण उनकी भाषा में विशेष प्रवाह है। इसमें प्रवाह के साथ ही गम्भीरता और सरसता है।

अष्टम सर्ग में शिवस्तुति के अवसर पर संस्कृत के तत्सम-शब्दों से युक्त समासान्त प्रयोग ओजगुण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

जय जय भव-भय-हरन दरन दुख-दंद दयामय।
जय जय तरुनादित्य-तेज करुना-वरुनालय॥
जय जय असरन-सरन-भरन जग-विपति-विदारन।
जय जय औढर-सरनि-ढरन सुरसरि-सिर-धारन॥

अष्टम सर्ग में गङ्गावतरण के प्रसंग में ओज गुण-व्यंजक वर्णों की सहायता से गङ्गा के प्रवाह में बहते हुए शिलाखंडों की टकराहट के साथ भाषा भी उसी स्वर में प्रवाहित हो रही है। इसमें विशेष रूप से ढ और ट तथा र के कारण विशिष्ट व्यंजना लक्षित होती है। प्रवाहात्मकता का तो कुछ कहना ही नहीं हैं :—

कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैं पकर्यौ मग सोचति॥
कबहुँ चलति कतराइ बक्र नव बाट काटि गहि।
कबहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि बहि॥८।२५

शुद्धता

'रत्नाकर' जी की भाषा अत्यधिक शुद्ध है। शुद्धता में उन्हें रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में अग्रणी कहा जा सकता है। उन्होने एक भाषा शास्त्री के समान भाषा का शृङ्गार किया। उनकी भाषा में एक ओर अलंकारिता और रसमयता है और दूसरी ओर व्रजभाषा के व्याकरण-नियमों का अनुसरण। उनकी भाषा में न तो शब्दों का तोड़-मरोड़ और न स्वरूप की विकृति का प्रयत्न ही है। सभी शब्द अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ क्रियाओं और लिंगों-वचनों की दृष्टि से शुद्ध हैं। भाषा पर उनके नियमों का भी नियन्त्रण है। यद्यपि वे भाषा के पंडित नहीं थे परन्तु उन्होंने अपनी भाषा के लिए व्याकरण की कुछ विधियाँ निश्चित की हैं और उन्हीं विधियों के अनुसार उन्होंने अपनी भाषा का संगठन किया।

इस प्रकार क्षेत्र के विस्तार की दृष्टि से हो अथवा लाक्षणिक अभिव्यंजना हो, लोकोक्तियों और मुहावरों के सुखद प्रयोग हों या शब्दालंकारों की योजना, सुन्दरता और मधुरता का आदर्श रूप हो अथवा ओज और प्रवाह तथा शुद्धता हो, सभी दृष्टिकोणों से रत्नाकर भाषा के कुशल जौहरी हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छन्द-योजना

किसी कवि के अन्तर से निकले हुए उद्‌गार अपनी लयात्मकता के साथ जिस सुव्यवस्था के अधीन होकर अभिव्यक्त होते हैं उसे 'छन्द' कहते हैं। छन्द काव्य की विशेष प्रवृत्ति का सूचक होता है, अर्थात् प्रकार-विशेष के काव्यात्मक प्रवाह को छन्द-विशेष में ही बाँधने का विधान है। इससे अभिव्यक्ति की वक्रता और रचना की प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। सांगीतिक-प्रवाह से पूर्ण रमणीय छन्द-संघटन की क्षमता अभ्यास से ही उत्पन्न होती है। प्रतिभा की शक्ति से कवि हृदय से उदात्त-भाव उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु भावों को छन्दों की रमणीयता के साथ अभिव्यक्त करने की क्षमता सतत-प्रयत्न-सापेक्ष है। इसीलिए प्रतिभा के साथ शिक्षा और अभ्यास की भी अनिवार्य आवश्यकता है। कविवर रत्नाकर इस कला में नितान्त निपुण हैं।

सन् १९२२ में पद्यमय काव्य के विषय पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने स्वयं कहा था—

"काव्य दो प्रकार का होता है—गद्यमय और पद्यमय। प्रसाद गुण तो दोनों ही के लिए आवश्यक है, पर पद्यमय काव्य के निमित्त छन्दों का श्लिष्ट तथा सुश्रृंखल होना परम वांछनीय है। गद्य की अपेक्षा पद्य सहज ही अधिक रोचक तथा आकर्षक होता है। इसी कारण यद्यपि काव्य गद्य तथा पद्य दोनों में ही माना जाता है तथापि संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी इत्यादि सभी भाषाओं में काव्य, अधिकतर पद्य में ही लिखे गये और लिखे जाते हैं। इस बात की इतनी विशेषता है कि 'काव्य' शब्द के प्रयोग से ही एकाएक ध्यान पद्य काव्य पर ही जाता है अर्थात् काव्य शब्द एक प्रकार से पद्य-काव्य के लिए रूढ़ सा हो गया है। इसका मुख्य कारण यही है, कि छन्द की लय का जो एक अपना आनन्द है वह काव्यानन्द में मिलकर उसको अधिक बढ़ा देता है। लय की रमणीयता कुछ ऐसी व्यापक वस्तु है कि वे पक्षीगण भी, जिनका गाना सुखद माना जाता है, बँधी हुई लय ही में अपना हृदयोद्‌गार निकालते हैं। मेरी समझ में छन्दोबद्ध कविता के निमित्त छन्दों का सुश्रृंखल, सुढाल तथा नियम-संयुक्त एवं विषयानुकूल होना परम आवश्यक है।"

इस प्रकार छन्दों के विषय में नियम संयुक्तता, विषयानुकूल चयन और लय-रमणीयता रत्नाकर जी का आदर्श है। उनके लिए संगीत और लय का इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक महत्व था कि तुक और अनुप्रास रहित रचना को कविता कहना ही उन्हें अभीष्ट नहीं था। अपने 'समालोचनादर्श' के अन्त में उन्होंने इन्हीं विचारों को स्पष्ट किया है :—

जात खड़ी बोली पैं कोऊ मयौ दिवानौ।
कोऊ तुकांत बिनु पद्य लिखन मैं है अरुझानौ ॥
अनुप्रास प्रतिबंध कठिन जिनके उर माहीं।
त्यागि पद्य-प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यों नाहीं ॥
अनुप्रास कबहूँ न सुकवि की शक्ति घटावै।
बरु सच पूछौ तौ नव सूझि हिये उपजावै ॥

कविवर 'रत्नाकर' ने काव्य के लिए मुख्य दो छन्दों को चुना है—रोला और घनाक्षरी। इनके अतिरिक्त छप्पय तथा सवैया और कुछ दोहों का भी उन्होंने प्रयोग किया है।

गङ्गावतरण का प्रमुख छन्द 'रोला' ही है। रोला छन्द अपभ्रंश काव्यों में बड़ी सफलता के साथ प्रयुक्त हुआ है क्योंकि इसमें ओज का निर्वाह बड़ी सुन्दरता से किया जा सकता है। इसके साथ ही कथात्मक काव्य के लिए यह बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ है। 'गङ्गावतरण' के अतिरिक्त इन्होंने इस छन्द का प्रयोग 'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र' 'कलकाशी' आदि काव्यों में किया है। इस छन्द द्वारा काव्य के प्रवाह, रसात्मकता और प्रभावोत्पादकता की सुरक्षा हुई है। कवि ने शृङ्गार, वीर, करुण, रौद्र आदि रसों का निरूपण बड़ी निपुणता से इसी छन्द में किया है। गङ्गावतरण काव्य के मंगलाचरण में तीन छप्पय, प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक उल्लाला और ग्रन्थ के अन्त में एक दोहा तथा शेष समस्त काव्य मे रोला छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल जाने से काव्य का संगीतात्मक प्रवाह अधिक आकर्षक हो गया है।

गङ्गावतरण में वर्णित वीर, करुण, रौद्र, अद्भुत, भयानक, शृङ्गार और हास्य आदि सभी रसों का वर्णन रोला छन्द में किया गया है। 'रत्नाकर' जी के छन्दों की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संगीतात्मकता और लयात्मकता है। उनके छन्द के प्रत्येक शब्द से एक लय निकलती है जिससे सम्पूर्ण छन्दों में एक ध्वनि सी सुनाई पड़ती है। इस संगीतात्मक स्वरमयता के लिए उन्होंने शब्दों का सुनियोजित विन्यास किसी कुशल शिल्पकार के समान किया है। इसके उदाहरण अनेक हैं। कवि को जैसे भावों का वर्णन करना अभीष्ट है उसी के अनुसार उनके शब्दों में लय, ध्वनि और प्रवाह भी है।

अष्टम सर्ग में गङ्गागम के अवसर पर गङ्गा-प्रवाह में हर-हर का जो शब्द सुनाई पड़ता है उसी स्वर से युक्त शब्द-योजना भी है, लय और प्रवाह भी अद्भुत है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर हराति हर-हार सरिस घाटी सौं निकरति ।
भव-भय-भेक अनेक एक संगहिं सब निगरति ।।
अखिल हंस-वर-वंश घेरि साँकर घर धारे ।
भरभराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे ।। ८।२८

हर-हराने के पश्चात् घहराने का वर्णन देखिये—जिसमें गंगा की धारा गुफाओं में प्रविष्ट होकर पुनः वाहर निकलती है :—

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिं घहरति घुसि घूमति ।
प्रवल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति ।।
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति ।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-सृंगनि चूरति ।। ८।२९

वस्तुतः उनके शब्दों की व्यवस्था ऐसी अद्‌भुत है कि बड़े-बड़े आचार्यों तक ने उनकी प्रशंसा की है। "उनके छन्द ऐसे सजीव और कलात्मक हैं कि उनके छन्दों की तुलना अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि टेनीसन के छन्दों से की जा सकती है। टेनीसन के छन्दों में जो सम्पादन-शक्ति, शिल्पकारिता है उससे कम संघटन की शक्ति 'रत्नाकर' जी के छन्दों में नहीं है।"[1] छन्द के क्षेत्र में 'रत्नाकर' जी ने वहुत ही सीमित छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें रोला, घनाक्षरी और कवित्त का विशेप स्थान है। वस्तुतः ये सभी छन्द मुक्तक काव्य के लिए विशेष उपयोगी हैं। उनकी विशिष्ट छन्द-योजना की प्रशंसा करते हुए वावू श्याम-सुन्दरदास ने कहा है :—

"हिन्दी और अंग्रेजी के कवियों की भ्रान्त तुलनाएँ, अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं, परन्तु भाषा-सौन्दर्य, संगीत और छन्द संगठन में—कविता के कला पक्ष की सुकरता में—यदि 'रत्नाकर' की तुलना अँग्रेजी कवि टेनीसन से की जाय तो बहुत अंशों में उपयुक्त होगी। टेनीसन की कारीगरी भी रत्नाकर की ही भांति विशेप पुष्ट और संगीत से अनुमोदित हुई है। इन दोनों कवियों की सर्वश्रेष्ठ विशेपता यही भाषा-चमत्कार और छन्दों की रमणीयता स्थापित करने में है। दोनों में भावना की मौलिकता अधिक व्यापक और उदात्त न हो, तो भी रचना चातुरी में ये दोनों ही पारंगत हुए हैं। खड़ी बोली में भी कवित्तों की रचना होती है परन्तु साधारणतः खड़ी वोली के इन छन्दों में वह अन्तरङ्ग संगीत-ध्वनि नहीं होती। यही उस पुरानी पच्चीकारी की वात है, जितका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।"[2]

वस्तुतः भाषा, शैली और छंद की सुकरता ने उनके काव्य-शरीर को ऐसा स्वरूप दिया है जिसे देखकर काव्य रसिक मुग्ध हो जाते हैं।

१. रत्नाकर—व्यथित हृदय। २. रत्नाकर—व्यथित हृदय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलंकार-विधान

काव्य के आंतरिक पक्ष के पोषण का आधार अनुभूतियां और बाह्य पक्ष के आकर्षण का आधार अलंकार, भाषा और छन्द हैं। जिस प्रकार आंतरिक पक्ष की उत्कृष्टता के लिए उत्कृष्ट भावों का होना आवश्यक है उसी प्रकार बाह्य पक्ष उसी समय आकर्षक हो सकता है जब उसमें छन्द, भाषा, शैली और अलंकारों को सुन्दर योजना होगी। अतः उत्कृष्ट काव्य का आधार दोनों पक्षों की सुव्यवस्था है।

अलङ्कारों का सम्वन्ध भाव-सौन्दर्य-सृष्टि विभाव-चित्रण एवं काव्यगत चमत्कार से है। अलङ्कार, भावों तथा रसों की रमणीयता से भिन्न चमत्कार की सृष्टि रचते हुए केन्द्रीय भाव-व्यंजना के उपकार में सहायक होते हैं तथा भाव को ग्रहणीय और रमणीय बनाते हैं। मनुष्य के मन में मिश्रित भावों का जो प्रवाह उमड़ता रहता है, कवि अपनी कला-चातुरी द्वारा उनके केन्द्रीय भावों को जागृत करता है, जिससे पाठक संपूर्ण भावधारा में अवगाहन के लिए समर्थ हो जाता है। इसलिए गोचर विधान एक आवश्यक उपकरण है। गोचर का संबंध उन पदार्थों तक है जो सुग्राह्य हैं, जो वाह्य और आंतरिक वृत्तियों द्वारा सहज ही ग्रहण किए जा सकते हों।

रत्नाकर जी की दृष्टि अलंकारों के प्रयोग में सदैव भाव पर केन्द्रित रही है। उन्होंने भावोत्कर्ष के लिए अलंकारों की नई-नई विधियाँ खोज निकाली हैं। उनकी इस मौलिकता और सतर्कता के कारण, उनकी रचनाओं में काव्य के दोनों पक्षों का सम्यक् विकास हुआ है।

अलंकारों के प्रयोग में उनके निम्नांकित विधान हैं :—

१—वाह्य और आंतरिक वृत्तियों से ग्राह्य गोचर संकेतों द्वारा

२—प्रस्तुत-सीमा में अप्रस्तुत-विधान द्वारा

३—मुहावरों द्वारा प्रस्तुत अप्रस्तुत के बीच सादृश्य स्थापन द्वारा

४—प्रस्तुत अप्रस्तुत में सामञ्जस्य द्वारा

१—वाह्य और आंतरिक वृत्तियों से ग्राह्य गोचर संकेतों द्वारा—

काव्य-जगत् में गोचर का तात्पर्य केवल उन्हीं वस्तुओं से नहीं है जो केवल वाह्य इन्द्रियों से ग्राह्य हों। यहाँ गोचर का संकेत उन सम्पूर्ण पदार्थों से है जो सुग्राह्य हों, चाहे वाह्येन्द्रियों से अथवा हृदय-वृत्तियों से। इसमें कवि भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारा के उन ठोस तटों को उपस्थित करता है जो पाठक की दृष्टि को केन्द्रित करके भाव-मग्न कर देते हैं।

पंचम सर्ग में साठ हजार पुत्रों के भस्म होने का समाचार महाराज-सगर को शोक से मूर्छित कर देता है, उनके नेत्रों के आँसू सूख जाते हैं, उस समय बड़ी करुण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कोई अभिमंत्रित जल के छींटे देकर राजा को उठाने का प्रयत्न करता है और कोई उनके वक्षस्थल पर हाथ रखता है। इतने में गुरुवर वशिष्ठ यह निश्चित करते हैं कि कोशलपति की कुशलता रोने में ही है नहीं तो अतिशय शोक से उनका प्राणान्त हो जायगा। इस भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने 'घट' का जो उदाहरण दिया है वह रूपक द्वारा गम्भीर भाव को गोचर बना देता है :—

तव गुरुवर धरि धीर कियौ निर्धारित मन मैं।
कोसल-पति कुसलात बनति केवल रोवन मैं॥
जौ अति उबलत सोक-सलिल दृग-पथ नहिं पैहैं।
भूरि भाप सौं पूरि तुरत तौ घट फटि जैहैं॥ ५।१६

महाराज सगर अंशुमान के अंगों के स्पर्श और करुण क्रन्दन को सुनकर पुत्र के धड़कते हुए हृदय की सन्निधि पाकर इस प्रकार धीरे-धीरे चेतना-युक्त होने लगे मानो मेघ-गर्जन की ध्वनि से अचानक किसी तंत्री-वाद्य के तार-तार झंकृत हो उठे हों। यहाँ कवि ने गोचर संकेत तंत्री-वाद्य द्वारा राजा की अवस्था का मूर्त चित्र उपस्थित करके, उसे पाठकों के लिए अनुभूति-गम्य बना दिया है :—

लहि सन्निधि सम सील पूत के धरकत हिय की।
अनुकंपित कछु भई सिरा नरपति जग-प्रिय की॥
ज्यौं कोउ तंत्री-बाज उठत कछु गाजि गमक सौं।
सम सुर सात्म्य-समीप-बाद की नाद धमक सौं॥ ५।१८

प्रस्तुत की सीमा में अप्रस्तुत विधान द्वारा

'रत्नाकर' जी का अप्रस्तुत विधान प्रायः प्रस्तुत की परिधि के भीतर ही होता है। उनकी कल्पना प्रस्तुत भाव धारा से दूर हटकर नहीं चलती किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनके चित्रों में नवीनता नहीं रहती। निम्नांकित कथन में गङ्गास्नान के अवसर पर किसी स्त्री के द्वारा मस्तक पृथ्वी पर झुका कर चन्द्रमा को प्रणाम किया जा रहा है परन्तु इस अवसर पर कवि प्रस्तुत की परिधि के भीतर एक अद्भुत चमत्कार की सृष्टि कर रहा है। कवि की कल्पना है कि मानों वह स्त्री, पृथ्वी पर मस्तक झुका कर ब्रह्मा द्वारा लिखे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए भाग्य के अक्षर को मिटा रही है। भाग्य लिपि का अंकन-स्थान तो मस्तक ही है, इस विश्वास के आधार पर कवि ने यह अनुपम कल्पना की है :—

कोउ झुकि करति प्रनाम टेकि-महि माथ मयंकहिं।
मेटति मनहुँ विसाल भाल के कठिन कुअंकहिं॥

एक दूसरा उदाहरण देखिये—गङ्गा का जल चमचमाता हुआ आकाश-मार्ग से चला आ रहा है। चन्द्रमा को गङ्गा के वेग से गिरने के भय से भगवान् शंकर ने उसे व्याल-पाश से बाँध लिया है। चन्द्रमा तारों का नायक है। इसमें सन्देह अलंकार द्वारा कवि ने विलक्षण चमत्कार दिखलाया है। वह गङ्गा के चमकते जल की धारा को तारों की उद्दंड सेना कहता है जो अपने नायक चन्द्रमा को बँधा हुआ देख कर आकाश मार्ग से बड़ी तीव्रता से उतर रही है :—

कै निज नायक बँध्यो विलोकत व्याल पास तैं।
तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं॥

उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा कवि द्वारा प्रस्तुत की परिधि में अप्रस्तुत विधान का एक और उदाहरण देखिये :—

इमि सगर-नृपति-नंदन सकल कपिल-कोप परि जरि गए।
मनु साठ सहस नरमेध मख गङ्ग-अवतरन-हित भए॥

मुहावरों द्वारा प्रस्तुत अप्रस्तुत के बीच सादृश्य स्थापन द्वारा

रीतिकाल के कवियों द्वारा प्रस्तुत रूपक चित्रों में अधिकांश में विम्व प्रतिविम्ब भाव नहीं मिलता। 'रत्नाकर' जी ने इस अभाव को दूर करने के लिए एक ऐसी युक्ति निकाली है जिसकी ओर उनके पूर्व कवियों का विशेष ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था। उन्होंने दूरगामी आरोपों के स्थायित्व के लिए मुहाविरों और समुचित प्रयोगों का विधान स्थापित किया है। उन्होंने प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मध्य में ऐसे समुचित प्रयोग और मुहाविरे स्थापित किए हैं कि उनके वीच निरंतर सादृश्य वना रहता है और अप्रस्तुत-विधान में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। सादृश्य स्थापित करने वाले कवि के चुने हुए शब्द-प्रयोग वड़े मार्मिक और ओजस्वी हैं। वे समीपवर्ती शब्दों में ओजस्विता उत्पन्न करने के साथ ही भावों को भी मुखरित करते हैं। जिस समय महाराज सगर ने अपने साठ सहस्त्र पुत्रों के मरने का समाचार सुना, शोक का समुद्र उमड़ पड़ा और उस समुद्र में मानो यज्ञशाला वहने लगी, जिसमें उठती हुई यज्ञ की ज्वालायें समुद्र को शुष्क करने वाली वड़वाग्नि के समान लगने लगीं। यहाँ शोक-समुद्र में रूपक है जिसकी पूर्णता वड़वाग्नि के रूपक द्वारा दिखाई गई है आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलकर समुद्र के उमड़ने का वर्णन है जिसकी अभिव्यंजना 'पीर की लहर' से की गई है, 'उछाल और आनंद पर पानी फिर गया' ऐसा कहकर मानो उमड़े हुए समुद्र की तरंगों में उछाह और आनंद तटवर्ती गाँवों के समान बह गये। बहने पर समुद्र की सीमा भी टूट जाती है, जिसकी अभिव्यंजना 'धीर मरजाद नसानी' से की गई है :—

उमड़्यौ सोक-समुद्र भई विप्लुत मखसाला।
बड़वागिनि सी लगन लगी जज्ञागिनि-ज्वाला॥
गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनंद पर पानी।
बढ़ी पीर की लहर धीर-मरजाद नसानी॥

यहाँ 'रत्नाकर' जी ने शब्द योजना से एक सुन्दर साम्य-सा प्रस्तुत कर दिया है जो अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। गङ्गावतरण के चतुर्थ सर्ग में, राधा कृष्ण रास प्रसंग में, गङ्गा के उत्पत्ति की पौराणिक कथा का उल्लेखन करते हुए कवि ने राधा के रोष का, सांगरूपक अलंकार द्वारा मुहाविरों की सहायता से बड़ा सजीव चित्र उपस्थित किआ है :—

निरखि नीठि निज ओर परति दुहुँ-दीठि कनौड़ी।
अनख-घटा अति सघन धूमि राधा-उर औंड़ी॥
उठी चमक चित भए सजल दृग-छोर छबीले।
प्रगटे सब्द कठोर भाव बरसे तरजीले॥

यहाँ आक्रोश के भाव को घटा का रूपक दिया गया है पुनः चित्त में 'चमक का उठना' मुहाविरे के प्रयोग द्वारा, घटा में उत्पन्न विद्युत का आभास और तब 'नेत्रों में जल आना' कहकर मेघों के सजल होने का तथा कठोर शब्दों और अस्वीकारात्मक भावों के द्वारा मेघवृष्टि का संकेत करके कवि ने बड़ी सादृश्य पूर्ण अभिव्यंजना, रूपक के माध्यम से की है।

जब रत्नाकर जी यह देखते हैं कि सम्पूर्ण प्रस्तुत दृश्य को विधान के अन्तर्गत लेकर भी अप्रस्तुत विधान किया जा सकता है तो वे अपनी प्रतिभा से एक सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं जो प्रस्तुत के मेल में ठीक बैठ जाता है :—

कबहुँ बायु सौं बिचलि बंक-गति लहरति धावै।
मनहुँ सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै॥
कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै।
मनु-मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छवि छाजै॥

उपर्युक्त छन्द में कवि ने वायु वेग से वक्र प्रतीत होने वाली गङ्गा की उज्ज्वल धारा का सादृश्य, शेष-नाग की श्वेतता से दिया है। पुनः पृथ्वी-तल पर फेन युक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जल का सादृश्य उपस्थित करने के लिए उसको क्षीर-सागर पर मोतियों के समूह के समान कहा है—जो कवि की दूरदर्शिनी प्रतिभा का परिचायक है।

प्रस्तुत- अप्रस्तुत में सामञ्जस्य द्वारा

'रत्नाकर' जी का अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत के पूर्णतया सामञ्जस्य में दिखाई देता है। उनमें ऐसे भावों को नहीं लाया गया है जिनसे प्रस्तुत भावों की व्यंजना पर आघात लगे। वस्तुत: ऐसे विधानों का आधार सूक्ष्म निरीक्षण तथा कल्पना की उर्वरता पर आश्रित है। उनके अप्रस्तुत विधान में सम्पूर्ण स्थानों पर एक नवीनता तथा अद्‌भुत चमत्कार, सर्वत्र प्राप्त होता है। अंशुमान अश्वमेध के घोड़े का अन्वेषण करता हुआ अन्त में पातालगामी मार्ग पर पहुँचता है, वह उसकी गहराई की थाह अपनी दृष्टि से ले रहा है। थाह लेने के लिए डोर इत्यादि की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में दृष्टि के ऊपर यह आरोप कितना सार्थक है :—

तिहिं लखि ललकि कुमार लग्यौ दृग-डोरनि थाहन।
कछु विस्मय कछु हर्ष कछुक चिन्ता सौ चाहन॥

अलंकार विधान के अवसर पर कवि भावों को स्पष्ट तथा रमणीय बनाने के प्रयत्न में रहता है। कभी-कभी वह वाह्य स्वरूपों के चित्रण में तन्मय हो जाता है। किन्तु कभी-कभी वाह्य तथा आन्तरिक-दृश्यों की समन्वित योजना प्रस्तुत करता है। वाह्य चित्र में उत्प्रेक्षा के माध्यम से एक संश्लिष्ट चित्र देखिये :—

कहुँ अटूट बहु धार गिरति हिमकूट-तुण्ड तैं।
ऐरावत के सुंड मनहु लटकत भुसुंड तैं॥
छटकि छींट छवि छाइ छत्र लौं छिति पर छहरै।
सुंड भरचौ जल मनहुँ फैलि फुफकारनि फहरै॥ ८।२३

हिमांचल की चोटी से गिरती हुई धारा की श्वेतता ऊपर से चौड़ी और नीचे से पतली है मानों श्वेत ऐरावत की सूंड़ धड़ से लटक रही हो। पर्वत हाथी का धड़ है और जल धार उसकी सूँड़ है, पुन: धारा का प्रसार पृथ्वी पर छत्र के समान फैल रहा है, मानों हाथी अपनी सूड़ में जल लेकर पुन: फुहारे की भांति उगल रहा हो, जो चारों ओर छत्र के समान छा गया है। इन चार पंक्तियों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के समन्वय का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अंक में राधा-कृष्ण के प्रेम-जनित रोमांच का वर्णन करने के लिए कवि द्वारा प्रयुक्त दोनों उपमान बड़े उपयुक्त हैं जिससे मानो अमूर्त्त भाव मूर्त्त रूप में उपस्थित हो उठा है :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिपुल पुलक दुहुँ गात परसपर सरस परस के।
पीत नीलमनि माहिं मनौ अंकुर सुचि रस के॥
सुधि-करि विविध विलास फुरति अंग-अंग फुरहरी॥
मनु सुखमा कै सिंधु उठति आनन्द की लहरी॥ ४।२४

यहाँ राधा और कृष्ण क्रमशः श्याम और गौर वर्ण हैं इसलिए उन्हें पीले और नीले रत्नों के समान कहा गया है, उनका शरीर देदीप्यमान तो है ही स्पर्श के कारण रोमांचित हो रहा है जिसकी उत्प्रेक्षा में कवि ने दोनों रत्नों की दुरंगी किरणों की उत्प्रेक्षा प्रस्तुत की है। इस भाव की पूर्णता के लिए तृतीय पंक्ति में कवि दूसरे उपमान की योजना करता है। स्पर्श के कारण होने वाले रोमांच में पूर्व-विलास-क्रियाओं का स्मरण सहयोग दे रहा है जिससे वे प्रसन्न हैं, मानो सुख के सागर में आनंद की तरंगें लहरा रही हों। यहाँ रोमांच को आनंद की तरंगों से तुलना करके कवि ने सूक्ष्म सामंजस्य स्थापित किया है, जो नितान्त भावपूर्ण है।

प्रसंग के अनुसार जब भाव का महत्व होता है तो 'रत्नाकर' जी उसी को लक्ष्य कर अप्रस्तुत विधान करते हैं। ऐसे विधानों में वाह्य-स्वरूपों का साम्य चाहे उतना न मिले, पर ऊपर से आई हुई वस्तुओं का प्रसंग-प्राप्त भावों के साथ अवश्य साम्य रहता है। पुत्रों के भस्म होने का वृत्तान्त महाराज सगर को जड़ बना देता है, मुख पर कोई भाव नहीं आता मानो कोई गाँव उजड़ गया हो :—

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराये।
वज्राघात सहस्त्र साठ संगहिं सिर आये॥
कढ़्यौ कंठ नहिं वैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
आनन भाव-बिहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ॥

'रत्नाकर के अप्रस्तुत-विधान में प्रस्तुत का पूर्ण सहयोग है। वह प्रस्तुत की भाव व्यंजना में विघ्न न डालकर सहयोग देता है, जिसके कारण उनके अप्रस्तुत और प्रस्तुत एक ही श्रेणी में बैठे हुए हैं। उनके अप्रस्तुत नवीन और मौलिक हैं। उनमें आकर्षण और चमत्कारिता है। अप्रस्तुत को प्रस्तुत की श्रेणी में रखने के लिए उन्होंने जिन उपमाओं का प्रयोग किया है, वे मौलिक और नूतन हैं। इसमें भी कवि की कलाचातुरी का परिचय मिलता है।

रसों और भावों की अभिव्यंजना में आलम्बन-चित्रण महत्वपूर्ण होता है। शृङ्गारादि रसों में आलम्बन विशेष महत्वपूर्ण होता है। ऐसी परिस्थिति में कवि भी अलंकार-विधान इत्यादि के द्वारा आलम्बन को प्रत्यक्ष करने तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे रसोपयोगी बनाने में प्रयत्नशील रहता है। ऐसे अवसरों पर कवि को उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति आदि साम्यमूलक अलंकारों से विशेष सहायता मिलती है। अद्भुत कल्पना का प्रदर्शन करने एवं चमत्कार सृष्टि में विरोध, विषम जैसे अलंकार सहायक होते हैं।

कवि उपमा द्वारा जो साम्य उपस्थित करता है उसमें अप्रस्तुत के सादृश्य का विशेष ध्यान रखता है। गङ्गा के जल धारा की फुहार चतुर्दिक इस प्रकार पर्वत पर छाई हुई है मानों पर्वत पर झीने बादलों की छटा हो :—

उड़ति फुही की फाब फबति फहरति छवि-छाई।
ज्यौं परवत पर परत झीन बादर दरसाई॥

इसी साम्य से परिपूर्ण उत्प्रेक्षा और संदेह का एक उदाहरण देखिये :—

मनु दिगङ्गना गङ्ग न्हाइ कीन्हे निज अंगी।
नव भूपन नव-रत्न-रचित सारी सतरंगी॥
गङ्गागम-पथ माँहि भानु कैधौं अति नीकी।
बाँधी बंदनवार विविध बहु पटापटी की॥

यहाँ गङ्गा की धारा पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की सतरंगी आभा से कवि ने उत्प्रेक्षा और सन्देह के माध्यम से विलक्षण दृश्य उपस्थित किया है। चित्रण का कार्य तो उपमा, रूपक, अपह्नुति इत्यादि से भी हो जाता है किन्तु इस कार्य में वस्तूत्प्रेक्षा जितनी समर्थ है उतना अन्य कोई अलंकार नहीं। इस अलंकार में कवि को क्रीड़ा का विस्तृत अवकाश मिलता है इसका एक दृश्य देखिये :—

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत।
पुनि नीचै गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत॥
मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाये।
लरि अति ऊँचै उलरि गोति गुथि चलत सुहाए॥

गङ्गा की श्वेतवर्णी चंचल-तरंगे, टकराती हुई ऊपर उछलती हैं, फिर नीचे गिरती हैं जिस पर कवि ने झगड़ते हुई कागजी कबूतरों का आरोप किया है जो कुछ दूर ऊपर उड़कर फिर नीचे उतर आते हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा की विशेषता प्रस्तुत अप्रस्तुत के बीच बिंब-प्रतिबिंब भाव की पूर्ण सुरक्षा में है। ऐसा ही निम्नांकित उत्प्रेक्षा में भी है :—

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौ बेग उछारत।
जल-कंदुक के बृन्द वारि पुनि गहत उछारत॥
मनौ हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत।
भरत भाँवरै जुरत मुरत उलहत अवहेलत॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक द्वारा भी भावाभिव्यंजना और काव्य-चमत्कार-सृष्टि में विशेष सहायता मिलती है। इसका आधार लक्षणा है। 'रत्नाकर' जी ने रूपकालङ्कार की योजना बड़ी कलापूर्ण शैली में की है। जब वे देखते हैं कि साम्य बहुत दूर तक नहीं प्राप्त होता तो वे इसका कुछ हलका सा आभास देकर दूसरे अलङ्कारों की ओर बढ़ जाते हैं। इस दृष्टि से उपमा और रूपक का मेल तो अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। कहीं उपमा का पर्यवसान रूपक में और कहीं रूपक का पर्यवसान उपमा में दिखाई देता है। कहीं रूपक का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है :—

जय कल्पद्रुम - कुसुम - मंजु-मकरंद - तरंगिनि।
सुर-नर-मुनि-मन-मधुप-पुंज-सरबस-सुख संगिनि॥
जय वृन्दारक-वृन्द-वन्द्य कल काम दुहा की।
धवल धार सुख-सार जीवनाधार धरा की॥ ९।१३

प्रस्तुत पंक्तियों में दो चित्र हैं परन्तु दोनों में भाव साम्य है। प्रथम में कल्पद्रुम के कुसुम के मकरंद सी धारा वाली कहकर देवताओं इत्यादि को भ्रमर बनाकर रूपक का निर्वाह किया गया है दूसरे में कामधेनु कहकर—धारा को दुग्ध धारा के समान जीवन का आश्रय कहा गया है। अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार भाव-व्यंजना के लिए नितान्त उपयोगी होता है। यह तो व्यंजना का ही एक प्रकार कुछ आचार्यों द्वारा माना गया था। इसमें कुछ वक्रता की भी सृष्टि हो जाती है जो काव्य के अनुकूल पड़ती है। निम्नांकित छन्द में गङ्गा ने इतने पापियों का उद्धार किया है कि यमराज का काम ही ठप पड़ गया है और चित्रगुप्त चकित हो गये हैं। इस प्रकार यहाँ प्रस्तुत प्रसङ्ग द्वारा अप्रस्तुत की प्रशंसा की गई है :—

कोउ मगही सौं मुरत कोउ जमराज-सभा सौं।
कोउ नरकनि की फारि द्वार परिपूरि प्रभा सौं॥
चित्रगुप्त चितवत चरित्र यह चित्र भए से।
जकित जोहि जमराज काज निज बिसरि गए से॥१०।२३

गङ्गावतरण के सप्तम और अष्टम सर्ग में सन्देहालङ्कार के माध्यम से गङ्गा की धारा का अनेक रूपों में चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि की सूक्ष्म-दर्शिनी प्रतिभा के अमूल्य उदाहरण प्राप्त होते हैं।—एक उदाहरण देखिये :—

कै निज नायक बँध्यो विलोकत ब्याल-पास तैं।
तारनि की सेना उदण्ड उतरति अकास तै॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत।
हर हर करि हर-सीस एक सङ्गहि सब डारत॥ ७।२५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्देह और उत्प्रेक्षा के सम्मिलन में कवि की अनोखी कल्पना देखिये :—

स्वातिघटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैंधौ आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी॥
मीन-मकर-जल-व्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चञ्चल-छवि-छाई॥ ७।२१

उत्प्रेक्षा का एक प्रकार हेतूत्प्रेक्षा भी है जिसका चमत्कारपूर्ण प्रयोग कवि ने अनेक स्थानों पर किया है किन्तु कहीं भी भाव-शैथिल्य नहीं है बल्कि भाव प्रसारण में सहायता मिली है। एक उदाहरण देखिये---यहाँ गङ्गा हिमांचल की गुफा को फाड़ कर इस प्रकार निकल रही हैं मानों संसार के दुःख रूपी वृक्ष को काटने के लिए ब्रह्मा ने कुठार की रचना की हो। इस हेतूत्प्रेक्षा का पर्यवसान सन्देहालङ्कार में हो रहा है जिसमें कवि गङ्गा की धारा को सुकृति-सेना कहता है :—

गुफा फारि फहराइ चलत फैलत वर वारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज विधि रचत कुठारी॥
सगर-सुतनि के दुरित-जूह पर कै मुनिवर की।
वृन्त-व्यूह रचि चलति सुकृति-सेना नर वर की॥ ८।३३

'रत्नाकर' जी ने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का ही पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। उनके शब्दालङ्कारों में भी एक नवीन परिपाटी का अनुसरण है। उनके अलङ्कारों में उनका कवि-स्वरूप मुखरित हो उठा है। इनमें स्वाभाविकता के साथ भाव-पोषक तत्वों की प्रधानता है। उनके शब्दों में छटा उत्पन्न होने के साथ ही भाव-सौन्दर्य भी है। शब्दालङ्कारों में उन्होंने प्रायः अनुप्रास, यमुक, वीप्सा और श्लेप का विशेष प्रयोग किया है। उनके अनुप्रास भाव पोषक हैं, जिसमें अनावश्यक शब्दों की योजना नहीं के बराबर है। उन्होंने संश्लिष्ट रूप में ही अनुप्रास जा प्रयोग किया है—

(१) सुमति सुमति प्रतिवदित वाक्य आसय समुझायौ।
(यमक)

(२) बहुरि सगर गर लागि मधुर बैननि समुझायौ।
(यमक)

३ इक इक बाँहि उमाहि किए गलबाँहि विराजैं।
इक इक कर बड़भाग बनज बंसी कल भ्राजैं॥ ४।२१
(वीप्सा और अनुप्रास)

शब्दालंकारों की भाँति ही अर्थालङ्कारों में रत्नाकर जी ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। अर्थालङ्कारों में उनके रूपक और उपमा के चित्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्वितीय हैं। उन्होंने लोकोक्ति अलङ्कार के प्रयोग से अनेक छन्दों को जीवन दे दिया है। यह अलङ्कार उनकी रचनाओं में आभूषणों में जड़े हुए रत्नों की भाँति सुशोभित हैं :—

कोउ पापिहिं तंचत्व प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावन-बीर बढ़त चौचंद मचावत॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत।
नौ-दो ग्यारह होत तीन-पाँचहिं बिसरावत॥

इस छन्द की सम्पूर्ण सजीवता लोकोक्तियों और मुहावरों पर निर्भर है। गङ्गा के प्रवाह का वर्णन करने के अवसर पर तथा नागरिकों के स्नान-प्रसंग में कई स्थानों पर रत्नाकर जी ने कारक दीपक अलङ्कार का बड़ा स्वाभाविक प्रयोग किया है :—

कहु ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैं पकर्‌यो मग सोधति॥
कबहुँ चलति कतराइ वक्र नव बाट काटि गहि।
कबहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि बहि॥ ८।२५

यहाँ एक ही कारक के साथ ढहाना, ढुकाना, ढकेलना, कतराना, वक्रगति से चलना इत्यादि क्रियाओं के एक साथ गुम्फन द्वारा कारक दीपक के माध्यम से प्रवाह की तीव्रता का वर्णन है।

कई स्थानों पर स्वभावोक्ति अलंकार का सफल प्रयोग किया गया है। इन वर्णनों में बहुत से ऐसे भी हैं जिस पर गङ्गावतरण के आधारभूत ग्रन्थों का प्रभाव है। निम्नांकित वर्णन पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है :—

लखत कनखियनि चखत नीर मृग बाघ परस्पर।
भाजत झपटत बनत पै न तजि नीर सुखद-वर॥
नाचत मुदित मयूर मंजु मद-चूर अघाए।
अहि जुड़ात तिन पास आइ सुख त्रास भुलायैं॥७।१०

इस प्रकार 'रत्नाकर' जी के सम्पूर्ण अलङ्कार बहुत चमत्कारपूर्ण हैं। उनके उपमा, रूपक, विरोधाभास, समुच्चय, कारकदीपक, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलङ्कारों के चित्र बड़े अनुपम हैं। इन अलङ्कारों के प्रयोग में उन्होंने अनेक नवीन युक्तियाँ निकाली हैं। जब एक युक्ति से सन्तोष नहीं हुआ है तब उन्होंने दूसरी युक्ति से भी काम लिया है। इन सम्पूर्ण युक्तियों में भावगाम्भीर्य और सजीवता विशेष रूप से वर्त्तमान है।

—: ० :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी साहित्य में 'रत्नाकर' का स्थान

किसी कवि का साहित्य में स्थान-निर्धारण उसके काव्य की सीमा, धर्म, प्रकृति और गुण के आधार पर किया जा सकता है। काव्य का मूल-तत्व व्यञ्जना है जिसकी प्रमुखता भक्तिकाव्यों में विशेष रूप से वर्त्तमान है। व्यंजना में हृदय को स्पर्श करने की जो अद्भुत शक्ति है उसी के कारण काव्य लोकोत्तर आनन्द का प्रतिपादक और कवि साक्षात् ब्रह्मा कहा गया है। इस भावधारा के अनोखे प्रवाह में सहृदय हृदयों को युग युगान्तर से प्रवाहित करने वाले भक्ति-काल के सूर्य और चन्द्र सूर और तुलसी हैं जिनके काव्यों में युग की शाश्वत चेतना संस्कृति का अमर-कोष और रस की अजस्र प्रवाहिनी गङ्गा की पवित्रता है।

यदि इस दृष्टि से हम 'रत्नाकर' के काव्य का मूल्यांकन कर उनका साहित्य में स्थान निर्धारित करें तो हमें यही कहना पड़ेगा कि वे इन कवियों की अतुल भाव राशि के एक अंश हैं, प्रतिच्छाया हैं। मौलिकता उनके काव्य की विशिष्टता नहीं। शृङ्गार परक रचनाओं की सरसता में वे किसी बड़े से बड़े कवि से बड़े हैं किन्तु मौलिकता में उन्हें उन कवियों के सम्मुख नतमस्तक होना आवश्यक हो जाता है।

यद्यपि उनका सम्पूर्ण काव्य भाव और कला-पक्ष की दृष्टि से समृद्ध है फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से तो यही कहना पड़ेगा कि उनका कला-पक्ष, भाव-पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ और सशक्त है जिसकी समकक्षता में रीतिकाल के विरले कवि ही आ सकते हैं। ब्रजभाषा के कवियों में गणना करने पर वे रीतिमुक्त शृङ्गारी कवि थे। यद्यपि उनका जन्म आधुनिक काल में हुआ जिसमें काव्य-रचना में खड़ी बोली का आधिपत्य बढ़ रहा था किन्तु ब्रजभाषा के वे सच्चे उपासक थे और आरम्भ से अन्त तक वे इसकी उपासना में तल्लीन रहे। उनकी गणना उन कवियों में की जा सकती है जो युग की उपेक्षा करके भी स्वयं उससे उपेक्षित नहीं रह पाते। उनकी मनोवृत्ति मध्ययुग की ही थी और वही वातावरण उनको रुचिकर था। अंग्रेजी का अध्ययन करने पर भी उसका प्रभाव उन पर विशेष रूप से नहीं पड़ सका।

"मध्ययुग हिन्दी-साहित्य का सुवर्णयुग था और रत्नाकर जी उसी की विभूति में रम गये थे। उनकी भाषा, उनके साहित्यिक विषय—सभी तत्कालीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। यहाँ तक कि उनके आचार-व्यवहार में भी उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी पूरे प्रसन्न भाव से रहते थे और उन्होंने हमारे इस युग की भाव-भाषा की कोई विशेष चिन्ता नहीं की।

सूर आदि मध्ययुग की संस्कृति के उन्नायक कवि थे, किन्तु रत्नाकर तो उस उन्नत युग की स्मृति-रक्षा या अनुकरण का उद्देश्य लेकर ही चले थे। जो अन्तर मूलकृति और उसकी अनुकृति में है, वही इनमें है। विगत युग के संस्कारों की स्थापना नव्यतर युग में करना निसर्गत: एक कृत्रिम प्रयास है। वह काव्य सुशोभन और गौरवास्पद हो सकता है, पर युग का अनिवार्य काव्य नहीं कहा जा सकता।

रत्नाकर जो अपने काव्य में जीवन की ऐसी कोई मौलिकता और अनिवार्यता लेकर नहीं आये। उसके स्थान पर वे उक्ति-कौशल अलङ्कार, भाषा की कारीगरी और छन्दों की सुघरता तथा पाण्डित्य लेकर आये थे। इस विषय में विशेष विवाद की जगह नहीं है कि हिन्दी संसार ने तुलसी और सूर की परम्परा को ही अपनी श्रेष्ठतम श्रद्धांजलि चढ़ाई है, अपितु यहाँ तो यह भी कहा जा सकता है कि तुलसी और सूर आदि को काव्य-रचना स्वयं हो हिन्दी के लिए शास्त्रीय बनकर अपने अनुगामी क्लेसिक कवियों की सृष्टि करने लगी। इसी कवि-मंडली में अन्तिम नाम रत्नाकर का लिया जा सकता है।"[1]

"रत्नाकर की दृष्टि शुद्ध कलाकार की दृष्टि थी। उनके लिए कविता साधन नहीं, साध्य थी। इसी कारण वे रीतिकालीन कवियों को श्रेणी में आते हुए भी उनसे इसलिए पृथक् दिखाई पड़ते हैं कि एक ओर तो उनमें आचार्यत्व के प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाई पड़ता और दूसरी ओर रीतियुगीन मुक्तक परम्परा के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्य रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति पाई जाती है। साथ ही शृङ्गार-रस के अतिरिक्त अन्य रसों में भी प्रचुर मात्रा में रचना करके उनको उनका अभीष्ट महत्व देना भी रत्नाकर जी को रीतिकालीन कवियों से पृथक् करता हुआ दिखाई देता है। उद्दीपन रूप से प्रकृति-वर्णन के स्थान पर आलंबन रूप में संश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण के कारण भी वे रीतिकालीन कवियों से पृथक् ही दिखाई देते हैं।"[2]

इस प्रकार भक्त-हृदय 'रत्नाकर' पुरातन व्रज जीवन की स्वच्छ-भाव-धारा में निमज्जित भाषा और काव्य शास्त्र के पण्डित थे। वे कलाकार प्रथम और

१—हिन्दी साहित्य : बीसवीं सदी—आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी।
२—आधुनिक व्रजभाषा काव्य—डॉ० जगदीश बाजपेयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि बाद में थे। इस सम्बन्ध में रत्नाकर जी के साहित्यिक महत्ता की चर्चा करते हुए आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी लिखते हैं :—

"अपने कतिपय श्रेष्ठ सहयोगियों और समकालीनों में, जो ब्रजभाषा साहित्य का श्रृङ्गार-कर रहे थे, रत्नाकर की विशिष्ट मर्यादा माननी पड़ेगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द में अधिक ऊँची प्रतिभा थी, किन्तु उन्हें अवसर न मिला। कवि-रत्न सत्यनारायण अधिक ऊँचे दर्जे के भावुक और गायक थे, किन्तु उनका न तो इतना अध्ययन था और न उनमें इतनी कला-कुशलता थी। श्रीधर पाठक ब्रजभाषा से अधिक खड़ी बोली के ही आचार्य हुए। वर्त्तमान और जीवित कवियों में कोई ऐसा नहीं जो आजीवन इनकी धाक न मानता रहा हो। विक्रम की बीसवीं शताब्दी समाप्त हो रही है। अतः जब आगामी शताब्दी के प्रारम्भ में पुराने कवियों और उनकी कृतियों की जाँच-पड़ताल की जायगी तब रत्नाकर को इस क्षेत्र में शीर्ष स्थान देते हुए, आशा है, किसी को कुछ भी असमंजस न होगा।"[1]

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि 'रत्नाकर' अपने काल के कवियों में विशिष्ट हैं। उनमें कलात्मक बुद्धिवाद तो है ही प्राचीन शैली के अनुगमन में भी विचारों की नूतनता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता जो उन्हें रीतिकालीन परम्पराओं से घिरे रहने पर भी तटस्थ कर देती है वह है उनके काव्य की सरस-स्वाभाविकता और भावों की सूक्ष्म ग्राहिता। यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व महत्वपूर्ण हो गया है। उनके काव्य की मार्मिकता अनुपम है। यद्यपि उनका प्रतिपाद्य मौलिक नहीं है किन्तु अभिव्यक्ति शैली की सशक्तता उन्हें आत्मनिर्भर बना देती है। छन्दों में माधुर्य और गीतात्मकता, भाषा की शुद्धता, ध्वन्यात्मकता और लाक्षणिक वक्रता, संस्कृत की समास-बहुल शैली के अनुगमन में भाषा-भाव और अलंकार का सुन्दर समन्वय, छन्द, संघटन और कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से वे अंग्रेजी कवि टेनीसन से तुलनीय है। वस्तुतः रीतिकाल में कला और भाव के समन्वय में बिहारी और घनानन्द के बाद रत्नाकर का स्थान ही है।

'रत्नाकर' रीतिमुक्त किन्तु श्रृंगारी कवियों में गिने जाते हैं जिसकी स्वस्थ परम्परा का आरम्भ विद्यापति और सूर की रचनाओं में ही दिखाई देता है। सूर का जीवन विषयक, काव्य-प्रेरणा और प्रतिभा का धरातल ऊँचा है, उनकी रसमयी चेतना रत्नाकर में कहाँ? रत्नाकर द्वारा वर्णित नारी-सौन्दर्य के चित्रों में रीतिकालीन कवियों का रुढ़िगत चित्र दिखाई पड़ता है। यह अवश्य है

१—हिन्दी साहित्य बीसवीं सदी—नन्द दुलारे बाजपेयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि उनके भाषा में शक्ति और छन्द का चमत्कार है। इसी प्रकार विद्यापति का रस-निमज्जित सौन्दर्य चित्र और आत्म-निलय-पूर्ण अभिव्यक्ति का भी उनमें अभाव है।

रीतिमुक्त कवि घनानन्द की तुलना में भी घनानन्द का सा अनुभूति-गाम्भीर्य और हृदय-पक्ष-प्रावल्य का उनमें अभाव है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि रत्नाकर का भाव-पक्ष निर्बल है। उद्धव-शतक की भाव-विह्वलता और चित्रात्मकता; वियोग श्रृङ्गार का आकर्षक-चित्र नितान्त प्रौढ़ और सशक्त शैली में साहित्य-भारती को प्रदान करना उनके जैसे कवि से ही सम्भव था। 'गङ्गावतरण' की भक्ति-भावना तथा भाव चित्रों की सुनियोजना तथा 'श्रृङ्गार लहरी' में व्यंजित श्रृङ्गार-भावना अद्वितीय है। वे वस्तुतः रीतिमुक्त श्रृङ्गारी कवियों में निरुपम विभूति हैं, उनकी सीमा में उनका दूसरा प्रतिद्वन्दी नहीं है।

वस्तुतः 'रत्नाकर' श्रृङ्गार की उर्मिल भावनाओं के अमर गायक हैं। उनका स्थान मध्यम-श्रेणी के कवियों में महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र ने 'देव और उनकी कविता' में काव्य की उच्चता की माप करते हुए जो कुछ लिखा है वह उनके विषय में अधिक उपयुक्त जान पड़ता है :—

"जो जीवन को समग्र रूप से ग्रहण करते हैं, जिनकी कल्पना और अनुभूति की गति उसकी विराट् से विराट् ऊँचाइयों तथा गम्भीर से गम्भीर गहराइयों तक होती है। शास्त्रीय शब्दावली में जिनका मधुर के साथ विराट् पर भी समान अधिकार होता है। हिन्दी में रामचरितमानस, सूरसागर, पद्मावत और कामायनी के स्रष्टा ही इस श्रेणी में आते हैं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi